वक्तव्य

इस छोटी सी पुस्तक का अभिप्राय पाठकों को उन महान् साहित्यिकों का परिचय देना है जिन्हें विश्व के समस्त विद्वानों ने एक स्वर से अपने समय का सर्वश्रेष्ठ कलाकार मान लिया है और इसीलिए जिन्हें संसार का सबसे बड़ा पुरस्कार 'नोबेल-पुरस्कार' देकर सम्मानित किया गया है।

नोबेल पुरस्कार की कहानी मनोरञ्जक है। उस मस्तिष्क के किसी अज्ञात कोने में, जिसका काम रात-दिन यही सोचना था कि कोई ऐसी वस्तु हाथ लगे जो पलक मारते ही युद्धार्थ आमने-सामने खड़ी सेनाओं का संहार कर सके, कोई ऐसी योजना भी चल रही थी, जो समय पाकर संसार के लिए परम लाभदायी प्रमाणित हुई। पर उससे भी अधिक मनोरंजक उन व्यक्तियों की जीवनी है, जिन्हें इस पुरस्कार-द्वारा सम्मानित किया गया है। मेरा अभिप्राय केवल साहित्यकारों से है।

साहित्यकारों की अपनी अलग दुनिया है। वे विश्व-जगत् से अलग रहकर उसके हित के लिए सोचते हैं। न उन्हें धन का लोभ है, न यश का। एकांत-जीवन और सरस्वती की आराधना ही उनका लक्ष्य है। उनमें से अधिकांश ऐसे हैं जिन्हें वाग्देवता को सिद्ध करने के लिए भारी बलि देनी पड़ी है, तब कहीं जाकर उनकी भेंट देवता द्वारा गृहीत हुई है। फिर सिद्ध बन जाने पर तो वे 'प्रलोभन' के क्षेत्र से और भी बाहर के हो गए।

अखबारों में नोबेल-पुरस्कार की सूचना निकली है। संवाददाता सिर के बल दौड़कर द्वार पर पहुँचते हैं, सबसे प्रथम अपने अखबारों में पुरस्कृत व्यक्ति का वक्तव्य और चित्र देने के लिए; पर साहित्यिक हैं अपने ही रंग में मस्त। उनमें से एक महिला हैं जो कह देती हैं—"मैं जानती हूँ, आप लोग यहाँ क्यों आए हैं। मुझे अभी-अभी एक केबिल-द्वारा नोबेल-पुरस्कार की सूचना मिली है। पर क्षमा करें यह समय शास्त्र-चर्चा का नहीं है, क्योंकि मैं अपने बच्चों को सुलाने जा रही हूँ।" दूसरे कवि हैं—और वे हमारे सौभाग्य से हमारे देश के ही थे—जो पुरस्कार की सूचना पाकर कह देते हैं—"इन पुरस्कर्ताओं ने तो मेरी शान्ति ही छीन ली।" एक ऐसे भी हैं जो कह देते हैं—"मेरे पास स्वयं इतना धन है कि मै उसकी व्यवस्था नहीं कर पाता;

और धन लेकर क्या करूँगा।" एक चौथे महानुभाव अपने जीवन में पुरस्कार लेना किसी भाँति स्वीकार नहीं करते, तब उन्हें मृत्यु के उपरान्त पुरस्कृत करना पड़ता है।

सन् १६०१ से लगाकर १६३६ तक विभिन्न देशों के ऐसे ही ३८ महान् साहित्यिकों को नोबेल-पुरस्कार-द्वारा सम्मानित किया जा चुका है। इस छोटी सी पुस्तक में उनकी विस्तृत जीवनियाँ नहीं दी जा सकती थीं। अतएव संक्षिप्त जीवनियों और कालक्रमानुसार उनकी पुस्तकों के नाम गिनाने पर ही सन्तोष करना पड़ा है। हाँ, प्रत्येक लेखक की एक-एक पुस्तक का परिचय कुछ अधिक भी दे दिया गया है। ये वे ही पुस्तकें हैं जिन पर नोबेल-पुरस्कार मिला है जो संसार की प्रायः समस्त सभ्य-भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं, जिनमें से प्रत्येक की कई-कई लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं और इस प्रकार जिनका स्थान विश्व-साहित्य में प्रतिष्ठित हो चुका है।

यहाँ एक बात का उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। युद्ध की परिस्थितियों के कारण स्वीडिश एकेडेमी ने एक प्रस्ताव पास करके उक्त पुरस्कार का वितरण सन् १६४० से स्थगित कर दिया है। उधर हर हिटलर ने भी आज्ञा निकाल दी थी कि जर्मनी का कोई विद्वान् इस पुरस्कार को स्वीकार न करे। फल यह हुआ है कि सिलाँप्पा के बाद, जिनका उल्लेख इस पुस्तक में सब से अन्त में हुआ है, किसी को यह पुरस्कार नहीं दिया गया है। न नोबेल पुरस्कार सम्बन्धी अन्य सूचनाएँ ही मिल सकी हैं। सिलाँप्पा का जीवनवृत्त भी अभी विस्तार से प्राप्त नहीं हो सका है, न उनकी कृतियों के अनुवाद ही हमारे देश में सुलभ हैं। इस दशा में तत्कालीन अँग्रेजी पत्रों की सूचनाओं पर ही सन्तोष करना पड़ा है।

विश्व-साहित्य की इन अमर कृतियों में से अधिकांश का अनुवाद हमारी हिन्दी में अभी तक नहीं हुआ है। यह हमारे लिए खेद और लज्जा की बात है। प्रस्तुत पुस्तक का एक उद्देश्य उन रचनाओं की ओर अपने देशवासियों का ध्यान आकर्षित करना भी है, जिससे शीघ्र ही हमें अपनी मातृ-भाषा-द्वारा उनके रसास्वादन का अवसर मिल सके। तथास्तु!

—प्रकाशक

सूची

अल्फ़्रेड नोबेल और उनका पुरस्कार

जन्म : सन् १८३३ मृत्यु : सन् १८९६

अल्फ़्रेड नोबेल का नाम आविष्क्रिया और मानव-हित का पर्याय-वाचक माना जाता है। इनके पूर्वजो की अल्ल पहले 'नोबिलिअस' थी। अल्फ़्रेड के पितामह इमेनुअल ने जो सेना में शस्त्र चिकित्सक थे, इस अल्ल को बदलकर 'नोबेल' कर दिया और तब से इस वश के लोग नोबेल नाम से पुकारे जाने लगे। अल्फ़्रेड के पिता का नाम इमेन्युअल नोबेल था और वे अपनी युवावस्था मे स्टाकहाम के एक कॉलिज मे विज्ञान के अध्यापक थे। वे विस्फोटकों, समुद्री सुरङ्गों तथा अन्य ऐसी ही जन-विध्वंसक वस्तुओ पर प्रयोग किया करते थे। यह नितान्त संयोग की एवं आश्चय-जनक बात है कि ऐसे वैज्ञानिक के हाथ से जिसका काम रात-दिन यही सोचना था कि ऐसी कौन सी वस्तु निकालूँ जो पलक मारते ही हज़ारो-लाखों मनुष्यों का संहार कर डाले, कुछ ऐसी वस्तुएँ भी बन गईं जो मनुष्य जाति के लिए बहुत अधिक लाभकारी प्रमाणित हुईं। इण्डिया-रबर कुशन्स तथा कुछ अन्य शस्त्र-चिकित्सा सम्बन्धी ऐसी औषधो का भी अन्वेषण उन्होने किया था जिनसे मानव-जाति का बहुत बड़ा हित हुआ है। यह सर्वविदित है कि मनुष्य मृत्यु के कारण ही जीवन को बहुमूल्य समझने लगता है। अतः सम्भव है कि जीवन-नाश करनेवाली वस्तुओ पर विचार करते-करते इमेन्युअल नोबेल के हृदय में भी जीवन के प्रति मोह उत्पन्न हो गया हो और उन्होने कुछ ऐसी वस्तुएँ खोज निकाली हों जिनसे विशेष अवस्थाओ में जीवन-रक्षा बहुत साध्य हो सकती है। जहाज़-निर्माण की कला मे भी इमेन्युअल को काफ़ी दिलचस्पी थी और इसके लिए

उन्होंने अपने जीवन का कुछ भाग मिश्र में रहकर भी व्यतीत किया था। उनके पुत्रों में इमेन्युअल के सभी गुण आ गये थे। वे भी अपने पिता की भाँति वैज्ञानिक अन्वेषणों और भयानक से भयानक उपादानों व विस्फोटकों की खोज में रहा करते थे।

इमेन्युअल नोबेल विस्फोटकों के परीक्षण के सिलसिले मे नाइट्रो-ग्लीसरीन तथा अन्य रसायनों का परीक्षण कर ही रहे थे कि अकस्मात् विस्फोटन की ऐसी दो घटनाएँ हो गईं जिनसे उनकी बहुत हानि हुई। पहली घटना सन् १८३७ में स्टाकहाम में हुई जिसमें विस्फोट ऐसा भयानक हुआ कि लोग उसके शब्द से विक्षिप्त हो गये और मकानों की खिड़कियाँ चूर-चूर हो गईं। इस अशुभ घटना के बाद इमेन्युअल अपने मित्रों की सम्मति से रूस चले गये और वहाँ की प्रयोग-शालाओं मे समुद्री सुरङ्गों पर परीक्षण करने लगे। क्रीमियन युद्ध तक वे अपने परिवार के साथ रूस में ही रहे। रूस मे रहते हुए इमेन्युअल नोबेल ने कुछ ऐसे आविष्कार किये जो नौयुद्ध के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुए। उस युद्ध के सिलसिले में इमेन्युअल के परिवार के अन्य लोग तो स्वेडन लौट आये केवल एक पुत्र ल्विडिङ्ग वहीं बना रहा जो आगे चलकर रूस का एक प्रख्यात इञ्जीनियर हुआ। बाकू के पेटरोल के अक्षय्य स्रोतो का पता ल्विडिङ्ग ने ही लगाया था। विस्फोटन की दूसरी घटना सन् १८६४ में स्वेडन में हुई जिसके फल-स्वरूप इमेन्युअल नोबेल के एक लड़के की मृत्यु हो गई। इस आकस्मिक आघात से इमेन्युअल का मस्तिष्क विकृत हो गया और फिर अपने शेप जीवन में वे और कुछ न कर सके।

हमारे चरितनायक अल्फ्रेड बर्नहार्ड नोबेल का जन्म सन् १८३३ ई० मे स्टाकहाम मे हुआ था। इनका शरीर दुर्बल था और कभी स्वस्थ न रहता था। आज सर्दी हो गई है, कल ज्वर आ गया, परसों अजीर्ण हो गया, यही क्रम इनका बराबर चलता रहता था। लगातार अस्वस्थ रहने के कारण इनकी माता बराबर इनके पास रहती थी और

इसीलिए अपने अन्य पुत्रों की अपेक्षा वे इन्हें प्यार भी अधिक करती थीं। वे इन्हें बाइबिल और धर्मग्रन्थों से कथाऍं पढ़-पढ़कर सुनाया करती थीं। वे बहुत अधिक आशावादिनी थीं और कहा करती थीं कि शरीर से दुर्बल और अस्वस्थ होते हुए भी अल्फ्रेड संसार का

एल्फ्रेड नोबेल

प्रसिद्ध व्यक्ति होगा और वह कोई-न-कोई ऐसा काम कर जायगा जिससे उसका नाम लोग आदर से लिया करेंगे।

अल्फ्रेड के जीवन में कई घटनाएँ महत्त्वपूर्ण हुईं जिन्होंने इनके जीवन-प्रवाह को एक विशेष दिशा की ओर मोड़ दिया। युवावस्था में इन्होंने एक सुन्दरी से प्रेम करना आरम्भ किया था। दुर्भाग्यवश वह अल्पायु में ही मर गई। उसकी मृत्यु से अल्फ्रेड को बड़ा दुःख हुआ और फिर इन्होंने अविवाहित रहकर ही अपनी सारी आयु व्यतीत की। जीवन में किसी अन्य स्त्री का प्रेम न पाने का परिणाम यह हुआ कि ये अपनी माँ के अनन्य उपासक बन गये और इस प्रकार जब तक वे जीवित रहीं, अल्फ्रेड 'छोटा बच्चा' ही बने रहे। ये जहाँ कहीं होते, अपनी माँ को बराबर पत्र लिखा करते और बार-बार दौड़-दौड़कर उनसे मिलने स्वेडन आया करते। जब तक माँ जीवित रहीं, वात्सल्य का स्रोत अल्फ्रेड के जीवन में तब तक पूरे वेग से बहता रहा।

अपने पिता की भाँति रसायन, भौतिक-शास्त्र और यंत्र-विज्ञान अल्फ्रेड के भी प्रिय विषय थे और इनमें इन्होंने बहुत व्युत्पत्ति भी प्रदर्शित की थी। सत्रह वर्ष की आयु में यन्त्र-विज्ञान के विशेष अध्ययन के लिए इन्हें अमेरिका भेजा गया। जान एरिक्सन के सहयोग से वहाँ अल्फ्रेड ने नौ-सम्बन्धी यंत्रों का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। एरिक्सन के विषय में उन दिनों योरप में यह प्रसिद्धि थी कि उन्होंने एक ऐसा एञ्जिन बनाया है जो सूर्य की किरणों की शक्ति से परिचालित होता है। अल्फ्रेड अभी अमेरिका में ही थे कि एरिक्सन ने नये ढङ्ग के एक और एञ्जिन का आविष्कार किया। इस एञ्जिन की शक्ति की परीक्षा के लिए ११ फरवरी, १८५३ का दिन निश्चित हुआ। योजना यह था कि एञ्जिन को 'एरिक्सन' नाम के वाष्पपोत में लगाकर समुद्र की सैर की जाय। 'एरिक्सन' चला पर वह कुछ ही दूर गया था कि भयानक तूफ़ान आ गया। 'एरिक्सन' लहरों के प्रचण्ड आघात सहन न कर सका और उलट कर डूब गया। उसके साथ आविष्कर्ता की सारी आशाएँ भी जलमग्न हो गईं तथा ५० हज़ार डालर की पूँजी भी, जो 'एरिक्सन' के बनाने में लगी थी।

अल्फ्रेड नोबेल के मस्तिष्क पर इस हानि की बहुत गहरी छाप पड़ी। उसी समय इन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि यदि जीवन में लक्ष्मी की कृपा हुई तो मै एक ऐसी धनराशि पृथक् रख दूँगा जिससे वैज्ञानिकों को अपने अन्वेषण-कार्य में सहायता मिलेगी और उन्हे अर्थ-संकट का सामना न करना पड़ेगा। इसके पश्चात् अल्फ्रेड स्वदेश लौट आये और अपने पिता व बड़े भाइयो को नाइट्रोग्लीसरीन के परीक्षणो में सहायता देने लगे। वे सदा एक ऐसे मिश्रण की खोज में रहते थे जो अपेक्षाकृत शक्तिशाली अधिक हो और भयानक कम।

सन् १८६७ की बात है। एक दिन अल्फ्रेड बैगन में से नाइ-ट्रोग्लीसरीन के भरे हुए पीपे उतार रहे थे। उनकी निगाह एक पीपे पर पड़ी जिसमें से नाइट्रोग्लीसरीन झर-झरकर उस बालू में टपक रहा था जो पीपे की रक्षा के लिए उसके चारो ओर रख दी गई थी। यह विस्फोटक द्रव बालू से मिल कर कड़ा मिश्रण बन गया था। नाइट्रोग्लीसरीन का बालू में पड़कर ठोस पदार्थ के रूप में परिवर्त्तित हो जाना भयानक विस्फोटको के इतिहास में अनोखी घटना थी। इसी से अल्फ्रेड ने डायनामाइट का आविष्कार किया जो भयानक विस्फोटक होने पर भी बेखतरे साथ ले जाया जा सकता था। अल्फ्रेड की चाह पूरी हो गई।

अपने आविष्कार को पेटेण्ट कराने के लिए नोबेल अल्फ्रेड ने कई देशो में प्रार्थनापत्र भेजे। इन्होने एक तेल का भी आविष्कार किया जो बहुत दिनों तक 'नोबेल का ब्लास्टिङ्ग तैल' के नाम से प्रसिद्ध रहा। इस तैल के निर्माण के लिए फ़ैक्टरियाँ खोलने के लिए इन्हें रुपये की आवश्यकता हुई। इन्होने फ्रांस के व्यापारियों को लिखा कि मैंने एक ऐसे तैल का आविष्कार किया है जिसकी एक बूँद में समस्त भूमण्डल को उड़ा देने की शक्ति है। फ्रांस के व्यापारियों ने उत्तर दिया कि हम भूमण्डल को बचाना चाहते हैं, इसलिए ऐसे तैल के

निर्माण मे सहायता देना उचित नहीं समझते। पर फ्रांस के सम्राट् तीसरे नैपोलियन को अल्फ्रेड की योजना पसन्द आ गई और उन्होंने प्रचुर धन देकर फ्रास मे अल्फ्रेड के काम के लिए कई फैक्टरियाँ खुलवा दीं।

फ्रास मे इस प्रकार अपने काम का विस्तार करने के पश्चात् जेब में बमों के कुछ नमूने लिये अल्फ्रेड अमेरिका पहुँचे। न्यूयार्क पहुँचने पर इन्हे ज्ञात हुआ कि ख्याति इनसे भी पहले वहाँ पहुँच चुकी है। अल्फ्रेड वहाँ जाकर एक होटल मे ठहरे थे। उसके मालिक को जब ज्ञात हुआ कि यह व्यक्ति अपने जेब मे एक भयानक वस्तु लिये घूम रहा है, तब उसने इन्हें अपने होटल से निकाल दिया। न्यूयार्क से अल्फ्रेड केलीफोर्निया चले गये जहाँ अपने एक मित्र की सहायता से इन्हें एक फैक्टरी खोलने मे सफलता मिल गई। फिर तो इनका काम ऐसा चला कि पाँच वर्ष के भीतर ही योरप के समस्त देशों मे इनकी फैक्टरियो का जाल बिछ गया। चालीस वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते अल्फ्रेड नोबेल ने उस भयानक विस्फोटक चूर्ण के व्यापार मे लाखों रुपये पैदा कर डाले थे।

पर नोबेल डाइनामाइट से ही सन्तुष्ट न थे। वे किसी ऐसे पदार्थ की खोज मे थे जो नाइट्रोग्लीसरीन को और अधिक अच्छे रूप में ठोस कर सके। एक बार पेरिस की अपनी एक फैक्टरी मे काम करते समय इनकी अँगुली कट गई और उससे रुधिर बहने लगा। तुरन्त ही इन्होंने एलकोहल और ईथर के मिश्रण मे गन कॉटन के एक टुकड़े को भिगोकर व्रण पर बाँध दिया। उसी समय अल्फ्रेड के मस्तिष्क में एक नया विचार आया। गन कॉटन एक भयानक विस्फोटक वस्तु है। इसे यदि नाइट्रोग्लीसरीन मे हल कर लिया जाय तो क्या द्विगुणित शक्तिशाली विस्फोटक नहीं बन जायगा? इन्होंने इसका परीक्षण किया। फलस्वरूप 'ब्लास्टिङ्ग जेलाटीन' नामक एक भयानक विस्फोटक बन गया। उसमें ५ प्रतिशत पेट्रोलियम जेली के मिला देने पर बड़ी बन्दूकों

के लिए एक उत्तम विस्फोटक बन जाता है। इस प्रकार नोबेल ने सन १८७८ ई० में संसार को पहली बार वह वस्तु दी जिसके कारण वर्तमान युद्ध का रूप ऐसा भयानक और नर-संहारकारी बन गया है।

इसके दस वर्ष पश्चात् बिना धुएँ की बारूद का आविष्कार करके इन्होंने दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। यह छोटे-छोटे अस्त्रों के विशेष उपयोग का था। सेन रोमियो स्थित फ़ैक्टरी में कार्य करते समय इन्होंने पेट्रोलियम और कृत्रिम गटापारचा की कई वस्तुएँ निर्माण करके पेटेन्ट कराईं। विज्ञानवेत्ता और पठित समाज इन बहुमूल्य आविष्कारों के लिए नोबेल को जितने सम्मान की दृष्टि से देखते थे, साधारण लोग भयानक आविष्कारों के कारण इनसे उतनी ही घृणा भी करते थे।

अल्फ्रेड नोबेल के पास अब काफ़ी सम्पत्ति हो चुकी थी और देश-विदेशों में उनका नाम भी हो चुका था, फिर भी एक तरह से ये अकेले थे। स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं था। सिर में सदा पीड़ा हुआ करती थी, जिसके कारण ये काम करते समय सिर में पट्टी बाँधे रहते थे। अपनी फ़ैक्टरियों के ज़हरीले धुएँ ने इनके स्वास्थ्य को और भी चौपट कर डाला था। प्रति वर्ष जाड़े के दिनों में ये खाँसी से पीड़ित रहा करते थे, फिर भी अपना काम नहीं छोड़ते थे। मोटे-मोटे ऊनी लबादे ओढ़े और कार में बैठे ये प्रतिदिन प्रयोगशाला की ओर जाते दिखाई देते थे। सिर का दर्द असह्य हो जाने पर ये जहाँ होते, वहीं लेट जाते और जब तक दर्द कम न होता लेटे रहते। सफलता के लिए इतना भारी मूल्य चुकाने का साहस किसी साधारण मनुष्य में नहीं हो सकता था।

कभी-कभी इनके मस्तिष्क में अविश्वास की भावनाएँ ज़ोर मारने लगती थीं। ये सोचते थे कि लोग धन के कारण ही हमारा उतना आदर करते हैं। इनकी परम विश्वासपात्र बर्था वान शटनर ने इनका शब्द-चित्र अङ्कित करते हुए लिखा है—"नोबेल का शरीर कुछ ठिगना था और उनमें किसी प्रकार का आकर्षण न था। फिर भी उनकी आकृति से किसी को घृणा नहीं होती थी; यद्यपि उनकी ऐसी ही धारणा

थी। उन्हें अनेक भाषाओं का अच्छा ज्ञान था और अपनी मातृभाषा के सिवा फ्रेंच, रशियन, जर्मन, और इँग्लिश धारा-प्रवाह बोल सकते थे। योरप के साहित्य का उन्होंने अच्छी तरह अध्ययन किया था। उन्हें चित्रों और कला का भी शौक था। बायरन की कविताएँ उन्हें अधिक पसन्द थीं। वे बातचीत करने और कहानियाँ कहने में पटु थे।"

संसार के सब से बड़े पुरस्कार 'नोबेल प्राइज' के विधाता ये ही थे। इसकी कहानी बड़ी मनोरंजक है। वान शटनर का प्रख्यात उपन्यास 'हथियार डाल दो' जब प्रकाशित हुआ तब नोबेल ने भी उसे पढ़ा। यह घटना सन् १८६० के आसपास की है। इस उपन्यास का चरम ध्येय विश्व-शान्ति है। नोबेल को उपन्यास बहुत पसन्द आया और उसकी प्रशंसा करते हुए इन्होंने कहा—"मैं चाहता हूं कि मैं किसी ऐसे मसाले या किसी ऐसी मशीन का आविष्कार करूँ जो कुछ क्षणों में ही प्रलय कर सके, जिसके द्वारा आमने-सामने युद्धार्थ खड़ी हुई सेनाएँ एक सेकेण्ड में ही एक दूसरी का सर्वनाश कर सकें। तब सभ्य कहानेवाली सभी जातियों की आँखें खुल जायेंगी और वे युद्ध करना छोड़ देंगी।"

इसके कुछ दिन बाद इन्होंने पेरिस से वान शटनर को एक पत्र में लिखा—"मैं अपनी सम्पत्ति का एक भाग एक पुरस्कार के लिए रख देना चाहता हूँ। यह पुरस्कार प्रति पाँचवें वर्ष—३० वर्ष में कुल ६ बार—दिया जायगा; क्योंकि यदि ३० वर्ष के लम्बे समय में भी राष्ट्र अपना रवैया न बदल सके तो वे बर्बरता की चरम सीमा पर पहुँच जायँगे।"

जीवन के पिछले दिनों में ये अपनी अपार सम्पत्ति की व्यवस्था के लिए चिन्तित हो उठे थे। उत्तराधिकारियों के लिए विपुल धन-राशि छोड़ जाना इन्हें पसन्द न था; क्योंकि ऐसा करने पर सम्पत्ति प्राय ऐसे अयोग्य मनुष्यों के पास पहुँच जाती है जो उसका सदुपयोग

करना नही जानते। ये चाहते थे कि हमारा धन साहित्य और विज्ञान की श्रीवृद्धि करने में सहायक बने जिससे मानवता का कल्याण हो और विश्व-शान्ति सम्भव हो जाय। इसी लिए सन् १८९० ई० में इन्होंने 'नोबेल प्राइज़' की स्थापना की।

यद्यपि अल्फ़्रेड ने स्वयं अनेक भयानक विस्फोटको का आविष्कार किया था पर इनका अन्तिम ध्येय युद्ध का हमेशा के लिए अन्त कर देना ही था। फिर इनका कथन यह भी था कि जिन वस्तुओ को विनाश और मृत्यु का साधन माना जाता है वे वस्तुतः मानवता के लिए बहुत लाभदायक है। उदाहरण के लिए डाइनामाइट को लिया जा सकता है। प्राचीन रोमवासियो को पहाड़ काटकर तीन मील सड़क तैयार करने के लिए ३० हजार आदमियो की जरूरत पड़ती थी। और वे ११ वर्ष मे उसे पूरा कर पाते थे। हार्ज़ के पहाड़ो मे पॉच मील का बालाख़ाना १५० वर्ष मे बनाया जा सका था। विस्फोटकों की सहायता से यह सब बहुत थोड़े समय मे किया जा सकता है।

अपनी सम्पत्ति की वसीयत और नोबेल प्राइज़ का विधान-पत्र नोबेल ने इस प्रकार लिखा है—"मेरे प्रत्येक भतीजे को ५-५ हज़ार पौंड देकर जो सम्पत्ति बचे उसे बेचकर रुपये कर लिये जायें। इन रुपयो को सुरक्षित बन्धक के रूप में बदल दिया जाय। इस प्रकार प्राप्त ब्याज से प्रति वर्ष ऐसे व्यक्तियो को पुरस्कार दिया जाय जिनका गत वर्ष का कार्य मानवता के लिए मौलिक रूप मे सबसे अधिक लाभ-दायक समझा जाय। ब्याज रूप में प्राप्त होनेवाले उक्त धन को ५ समान भागों में विभक्त किया जाय। एक भाग उस व्यक्ति के लिए जो भौतिक विज्ञान में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण खोज करे; दूसरा भाग उस व्यक्ति के लिए जो रसायन-विज्ञान में अत्यन्त उपयोगी खोज करे; तीसरा भाग इन्द्रिय-व्यापार-शास्त्र या चिकित्सा-शास्त्र में नई खोज करनेवाले व्यक्ति के लिए; चौथा भाग साहित्य-क्षेत्र में किसी आदर्श का नेतृत्व करनेवाली सर्वश्रेष्ठ कृति के लिए और पॉचवा भाग उस महान् पुरुष

के लिए जो राष्ट्रों मे भ्रातृत्व का प्रचार करनेवालो मे तथा वर्त्तमान सैनिक बल का अन्त करके विश्व मे शान्ति की स्थापना करने के प्रयत्न करनेवालों में सबसे बढ़कर माना जाय। पुरस्कार देते समय जाति या देश का विचार न किया जाय। जिसकी कृति अपने क्षेत्र मे पुरस्कार योग्य प्रमाणित हो उसे ही पुरस्कार दे दिया जाय—वह किसी जाति का हो या किसी देश का निवासी हो।"

सक्षेप में नोबेल ने पुरस्कार-सम्बन्धी अपना विधानपत्र इसी प्रकार का लिखा है।

पुरस्कार देने योग्य रचनाओं पर विचार करने का कार्य उन्होंने कुछ प्रामाणिक संस्थाओं पर डालते हुए लिखा है—

'भौतिक विज्ञान और रसायनशास्त्र पर पुरस्कार प्रदान करने का कार्य स्टाकहाम की 'स्वीडिश एकेडेमी ऑफ़ साइन्स' के जिम्मे रहेगा; शरीर-विज्ञान और औषध-विज्ञान पर 'केरोलिन मेडिकल इन्स्टीच्यूट' विचार करके देगी। साहित्य पर syenska akademia पुरस्कार देगी और शान्ति पर पुरस्कार देने के लिए एक कमिटी बनाई जायगी जिसमें ५ सदस्य रहेंगे। इन सदस्यों का निर्वाचन 'नार्वेजियन स्टार्थिंग'-द्वारा होगा।"

नोबेल प्राइज़ का मसविदा लिखते समय नोबेल ने किसी वकील की सम्मति नहीं ली थी। अत उनमे अनेक प्रकार की क़ानूनी त्रुटियो का रहजाना स्वाभाविक था। जब पुरस्कार वितरण की योजना सामने आई तब कानूनी बाधाएँ भी आईं। स्वेटन के सम्राट तथा नोबेल वश के एक उत्तराधिकारी ने मिलकर इन बाधाओं पर विचार किया और कुछ ऐसे उपनियम बना दिए जिनसे नोबेल का अभिप्राय भी स्पष्ट हो गया और पुरस्कार के मार्ग के बीच की कानूनी रुकावटें भी दूर हो गईं। उदाहरणार्थ नोबेल की इच्छा ऐसी रचना को पुरस्कृत करने की थी जिसका निर्माण पुरस्कार देने की तिथि, १० दिसम्बर, से एक वर्ष के भीतर ही हुआ हो। इसकी व्याख्या करते हुए कमिटी ने अपना

मत इस प्रकार व्यक्त किया कि "इस प्रकार के नियम का मूल उद्देश्य विज्ञान तथा साहित्य में नवीन शैली एवं ज्ञान की रक्षाकरना मात्र है।" एक उपनियम-द्वारा यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि यदि किसी वर्ष में एक से अधिक विद्वानो की रचनाएँ पुरस्कार की कोटि में आ जायँगी तो पुरस्कार का धन उनमें बराबर-बराबर बाँट दिया जायगा। इसी नियम के अनुसार, जैसा आगे ज्ञात होगा, सन् १६०४ का साहित्य-सम्बन्धी पुरस्कार जोशे ईज़ागिरी और फ्रेडरिक मिस्ट्राल नाम के दो साहित्यिको में आधा-आधा बाँट दिया गया था। इसी प्रकार कमिटी ने एक उपनियम-द्वारा यह भी स्पष्ट कर दिया कि जिस वर्ष कोई रचना पुरस्कार के उपयुक्त नही समझी जायगी, उस वर्ष पुरस्कार रोक लिया जायगा और उस धन को या तो मूल कोष में सम्मिलित कर दिया जायगा या उससे उस विभागविशेष की उन्नति के लिए कोई दूसरा कोष खोल दिया जायगा।

पुरस्कार के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातें—

नोबेल ने पुरस्कार के लिए लगभग २० लाख पौंड की स्थायी संपत्ति छोड़ी है जिसके व्याज की वार्षिक आय, टेक्स की रकम निकाल कर, ६ लाख रुपए से ऊपर है। यह आय अनेक कारणों से घटती-बढ़ती रहती है। फिर भी यह निश्चित है कि प्रत्येक पुरस्कार की रकम ६० हज़ार रुपए से कम और सवा लाख रुपए से अधिक कभी नहीं होती। इसकी व्यवस्था करने के लिए एक प्रबन्धकारिणी बना दी गई है जो 'नोबेल फ़ाउण्डेशन' (Nobel Foundation) कहलाती है। इसमें ५ सदस्य रहते हैं। सभापति का निर्वाचन स्वेडन के सम्राट् करते हैं।

साहित्यिक-पुरस्कार, जैसा कि ऊपर कह आए है, 'स्वीडिश एकेडेमी' के अधिकार का विषय है। इस संस्था का एक अपना विशाल पुस्तकालय है जिसकी गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में की

जाती है। इस पुस्तकालय में, जैसा कि स्वाभाविक है, संसार की सभी भाषाओं की प्रमुख पुस्तकों के अनुवाद या मूल रहते हैं। इस पुस्तकालय का प्रधानाध्यक्ष भी पुरस्कार-कमिटी का अनिवार्य सदस्य होता है।

पुरस्कारों के नियमोपनियम प्रति पाँचवें वर्ष प्रकाशित किए जाते हैं जिससे साधारण लोगों को उनके सम्बन्ध की जानकारी बनी रहे। जिस व्यक्ति को पुरस्कार दिया जाता है उससे यह आशा भी की जाती है कि वह एकेडेमी में स्वयं उपस्थित होकर विद्वानों के समक्ष पुरस्कृत विषय के सम्बन्ध मे एक मौलिक भाषण दे। यद्यपि यह अनिवार्य नियम नहीं है।

पुरस्कारार्थ विचार करने के लिए कोई विद्वान् स्वयं अपनी रचना सीधी नहीं भेज सकता। किसी अन्य प्रामाणिक विद्वान् को उक्त विद्वान की रचना की सिफ़ारिश करनी पड़ती है और पुरस्कार देने के लिए प्रस्ताव के रूप में उसे कमिटी के सामने उपस्थित करना होता है, तब कमिटी उस पर विचार करती है। प्रामाणिक विद्वानों मे स्वीडिश एकेडेमी या अन्य तत्सम एकेडेमियों के प्रतिनिधियों तथा महान् वैज्ञानिक या साहित्यिक आदि संस्थाओं के अध्यापको की भी गणना है। इस प्रकार के प्रस्ताव पुरस्कार समिति के पास प्रतिवर्ष फ़रवरी की पहिली तारीख़ तक पहुंच जाने चाहिए, अन्यथा समिति उनपर विचार करने को बाध्य न होगी।

पुरस्कार की घोषणा प्रतिवर्ष १० दिसम्बर को होती है, जो अल्फ्रेड नोवेल की निधन-तिथि है। एक बार घोषणा हो जाने पर फिर नियमानुसार उसमें कोई परिवर्त्तन नहीं हो सकता, चाहे उसका कितना ही प्रतिवाद पत्रों द्वारा क्यों न किया जाय। अपने नियमों में नोवेल ने यह स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने यह भी लिख दिया है कि पुरस्कार-समिति के आभ्यन्तरिक मतभेदों का प्रकाशन बाह्य जनता पर किसी प्रकार न हो। न समिति की रिपोर्टों में ही उनका किसी प्रकार का

उल्लेख हो। नियमानुसार घोषणा हो जाने के कुछ ही दिन बाद किसी विश्वस्त संस्था या उच्च-अधिकारी की मार्फ़त पुरस्कार की रकम निर्दिष्ट व्यक्ति के पास भेज दी जाती है। साथ ही एक स्वर्णपदक और एक सम्मान-पत्र भी भेजा जाता है। स्वर्णपदक में एक ओर अल्फ्रेड नोबेल की मूर्त्ति बनी होती है और दूसरी ओर पुरस्कृत व्यक्ति के संबंध मे कुछ प्रशंसात्मक शब्द।

सन् १९०१ से नोबेल पुरस्कार का वितरण आरंभ हुआ है और केवल साहित्य-विषयक पुरस्कार सन् १९३९ तक ३७ महान् साहित्यिकों को मिल चुका है जिनमें केवल एक—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर—ही भारतीय थे।

सली प्रडोम

जन्म : सन् १८३९ मृत्यु : सन् १९०७

साहित्य में नोबेल-पुरस्कार के सर्वप्रथम विजेता सली प्रडोम (Sully Prudhomme) थे। १६ मार्च सन् १८३९ को उनका जन्म पेरिस में हुआ था। अपने माँ-बाप की वे एकमात्र सन्तान थे। पिता की मृत्यु बचपन में हो जाने के कारण उन्हे मातृ-वात्सल्य पूर्ण मात्रा में प्राप्त हुआ था।

'लेसी बोनापार्टे' नामक संस्था से विज्ञान लेकर बी० ए० पास करने के पश्चात् उनकी आँखों में कुछ विकार आ गया, फलतः उन्हें अपना अध्ययन स्थगित कर देना पड़ा और वे घर पर रहने लगे। कुछ दिन बाद इस प्रकार के निरुद्देश्य जीवन से उनका मन ऊब गया।

और उन्होंने एक फैक्टरी में नौकरी कर ली। जीवन निर्वाह अब सरलता से होने लगा। पर लोहे की मशीनों की गड़गड़-खड़खड़ और फैक्टरी के नीरस वातावरण में मानसिक-स्वास्थ्य का अभाव होना स्वाभाविक है। परिणाम यह हुआ कि सली प्रडोम उस वातावरण में स्वयं को खपा न सके और वहाँ से शीघ्र अलग होकर स्वतंत्र रूप से सरस्वती की आराधना करने लगे।

कविता की ओर उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। उसी अवस्था में उनका प्रेम एक युवती से हो गया जो उनके प्रेम का प्रतिदान उचित रूप से न कर सकी। इससे उनके दिल को चोट लगी। इस मर्मपीड़ा ने उनकी भारती को मुखरित कर दिया। उनकी रचनाओं में निराशा-वेदना भर गई और वे सजीव सरस बन गईं।

कविता क्षेत्र में काफी अग्रसर हो जाने पर भी सली में आत्मविश्वास की कमी थी, जो किसी कलाकार के लिए सद्‌गुण ही होता है। उन दिनों फ्रांस में गेस्टन पेरिस का बोलबाला था। गेस्टन पेरिस भाषातत्त्व के मर्मज्ञ और भाषाविज्ञान के सर्वश्रेष्ठ वेत्ता माने जाते थे। सली ने उनसे शीघ्र मैत्री जोड़ ली। अपनी कविताओं पर उचित सम्मति देने वाला योग्य व्यक्ति अब उन्हें मिल गया। वे स्वच्छन्दता से रचना-कार्य में लग गए। छपने के पूर्व वे अपनी प्रत्येक रचना गेस्टन पेरिस को सुनाते और उनका अनुमोदन प्राप्त करने के बाद उसे जनता के सामने लाते। इस प्रकार उनकी रचनाएँ फ्रांस भर में आदर की दृष्टि से देखी जाने लगीं और उनका नाम प्रसिद्ध हो गया।

सन् १८६५ में उन्होंने अपना प्रथम कविता संग्रह 'स्टेन्सिस एट-पोइम्स' नाम से प्रकाशित किया। इस संग्रह की कविताएँ गेस्टन पेरिस को इतनी पसन्द आईं कि उन्होंने न केवल स्वयं उसकी अत्यधिक प्रशंसा की, अपने हाथों से एक प्रति प्रख्यात साहित्य मर्मज्ञ सेंट बेवे को भी भेंट की। कहने की आवश्यकता नहीं कि सेंट बेवे भी उन रचनाओं से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने उक्त पुस्तक की आलो-

चना बहुत अनुकूल की। वेवे की आलोचना एक प्रकार से फ्रांस के तत्कालीन साहित्य का मापदड थी । फिर क्या था, सारे फ्रांस में सली की धूम मच गई और वे फ्रांस के चोटी के कवि समझे जाने लगे।

सली प्रडोम

उधर समस्त देश सली की कविताओं मे रस ले रहा था और इधर सली अपने हृदय के समस्त जीवन रस को अपनी कविताओं में भर रहे थे। निराशा का उनके हृदय पर अब पूर्ण अधिकार हो गया था और वे जनसंपर्क से अधिक से अधिक दूर रहने लगे थे।

दैववशात् उन्हीं दिनों उनके परिवार में कोई ऐसी दुःखद-घटना

हो गई जिससे सली के हृदय को गहरा धक्का लगा। इस प्रकार वे सहसा उस स्थान पर पहुँच गए जिसकी ओर वे पिछले जीवन मे क्रमशः अग्रसर हो रहे थे। पारिवारिक जीवन से सर्वथा विरक्त होकर और समाज से सारे संबध विच्छेद करके वे एकान्त स्थान में जा बैठे और फिर शेष जीवन भर वहीं रहे। इस एकान्त निवास मे भी उनकी लेखनी बरावर चलती रही। उनकी इस समय की रचनाऐं अमर समझी जाती है और उनका फ्रेञ्च साहित्य मे विशिष्ट स्थान है।

सन् १८७५ मे उनका दूसरा काव्य संग्रह (Vaines Tendernesses) प्रकाशित हुआ, सन् १८७८ में तीसरा (La Justice) और फिर सन् १८८८ मे चौथा (Le Bonheur)।

नोवेल पुरस्कार स्थापित हो जाने पर इनकी रचनाऐं भी विचारार्थ उपस्थित की गईं। निर्णायको ने एकदम से निर्णय किया कि इन रचनाओ में उच्च आदर्शवाद और गहन-अनुभूति पूर्ण मात्रा मे विद्यमान है जो कि इस पुरस्कार द्वारा पुरस्कृत होने योग्य रचनाओं की सर्वप्रथम कसौटी हैं। फल-स्वरूप १० दिसबर १९०१ को इन्हे पुरस्कृत किया गया।

पुरस्कार प्राप्त होने के दिनों मे सली प्रडोम का स्वास्थ्य वहुत गिर गया था। संसार से उन्हें पूर्णरूप से विराग हो गया था। वे प्राय. कहा करते थे कि पुत्र के जन्म को लोग उत्सव का कारण क्यों मानते है जब कि संसार दु.खद संघर्षों का क्रीडास्थल मात्र है।

अन्य सामाजिक उत्सवों से भी उन्हें चिढ थी। वे कहते थे कि ये उत्सव, ये समारोह, मानव की आभ्यन्तरिक रिक्तता की प्रतिक्रिया और आत्मवंचना के प्रदर्शनमात्र हैं। पुरस्कार-द्वारा प्राप्त धन मे से आधे से अधिक इन्होंने एक कविता संबंधी पुरस्कार के लिए समर्पित कर दिया था।

इनकी निम्न पुस्तकें अधिक प्रसिद्ध है—

Stances of Poemes, Solitudes, Vaines Tendernesses,

La Justice, Le Bonheur, Le Testament Poetique, La Vraie Religion Selon Pascal

इनकी एक सुन्दर कविता के अंग्रेजी अनुवाद की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

Oh, did you know how the tears apace
Fall by a lonely heart, alas !
And did you know of the hopes that arise,
In warried soul from a pure young glance.
May be to my window yu'd lift your eyes
As if by chance...
But if you knew of the love that enwraps
My soul for you, and holds it fast.
Quite simple over my threshold, perhapds
You' d step at last.*

---

*क्या तुम्हें ज्ञात था कि किसी 'अकेले हृदय वाले' के आँसू ऐसी शीघ्रता से क्यों गिरने लगते हैं !

× × × ×

क्या तुम्हें उन आशाओं का पता था जो किसी पुरानी आत्मा में निश्छल युवा चितवन से उत्पन्न हो जाती हैं। शायद संयोगवश ही तुमने आँख उठा कर मेरी खिड़की की ओर देख लिया था।...........

पर यदि तुम्हें उस प्रेम का पता होता, जो मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति उत्पन्न हो गया है और जो मेरे हृदय को ग्रहण किए हुए है, तो तुम शायद मेरी देहरी पर चरण रखते ही।

थियोडोर मामसन

जन्म : सन् १८१७ मृत्यु : सन् १६०३

द्वितीय साहित्यिक नोवेल-पुरस्कार जर्मनी निवासी थियोडोर मामसन (Theodor Mommsen) को उनकी प्रसिद्ध पुस्तक "रोम का इतिहास" पर सन् १६०२ में दिया गया था। मामसन संसार के उन इने-गिने भाग्यशालियों मे थे जिन्हें अपनी कृतियों के कारण अपने जीवनकाल में ही वहुत कुछ सम्मान प्राप्त हो जाता है। नोवेल-पुरस्कार प्राप्त करने के समय उनकी अवस्था ८६ वर्ष की थी। इस प्रकार इस पुरस्कार को प्राप्त करनेवालों मे सवसे अधिक वय सम्भवत इन्ही का था। अपने ८६ वर्ष के लम्बे जीवनकाल मे उन्होंने लगभग एक सौ पुस्तकें लिखीं जिनके महत्त्व का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि संसार के वडे पुस्तकालयों मे ऐसा एक भी नहीं होगा जिसमें मामसन-लिखित इतिहास, विज्ञान, साहित्य और कानून विषयक अनेक ग्रथ मौजूद न हों।

मामसन का जन्म ३० नवम्बर, १८१७ को गार्डिङ्ग में हुआ था। घर पर पिता से कुछ समय तक प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वे कील विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए और वहाँ क़ानून और पुरातत्त्व की उच्चतम शिक्षा प्राप्त की। रोमन क़ानून और पुरातत्त्व की ओर उनकी प्रवृत्ति स्वभावतः अधिक थी। अभी वे २६ वर्ष के ही थे कि उन्हें रोम के शिलालेखों के अनुसधान का कार्य मिल गया। इस कार्य ने इनकी रोम-संवंधी इतिहास के ज्ञान को प्रौढ कर दिया और उस विपय पर इनका पूरा-पूरा अधिकार हो गया। इसके पश्चात् सन् १८४३ में डेनिश सरकार से छात्रवृत्ति प्राप्त कर उस विपय के संवंध में विशेप ज्ञान प्राप्त करने के लिए वे इटली गए जहाँ २ वर्प तक रहे। इसके वाद ३ वर्प तक उन्होंने फ्रांस और इटली के विभिन्न भागों में भ्रमण

किया। इस भ्रमण में उन्हें इतिहास-संबंधी अनेक प्रामाणिक तथ्य प्राप्त हुए जो उस समय तक इतिहासज्ञों को अज्ञात थे। भ्रमण से लौट आने पर जर्मनी के प्रसिद्ध पत्र (Schleswig Holstein) में उन्होंने एक लेखमाला लिखी। इस लेखमाला से मामसन के पाण्डित्य की

थियोडोर मामसन

धाक जम गई और वे उक्त पत्र के सम्पादक नियुक्त हो गए। उसी वर्ष उन्हें लीपज़िग में क़ानून की प्रोफ़ेसरी भी मिल गई।

राजनीति के दाँव-पेंच में व्युत्पन्न न होने पर भी जर्मनी की आन्तरिक राजनीति में हस्तक्षेप करने का मामसन को व्यसन-सा था, जिसके कारण उन्हें अनेक बार कठिनाइयों मे पड़ जाना पड़ा। लीपज़िग में प्रोफ़ेसरी करते हुए अभी उन्हें पूरा एक वर्ष भी न हुआ था कि एक राजनैतिक वखेडे मे दिलचस्पी लेने के अपराध मे उन्हे उक्त पद से पृथक् कर दिया गया। इसके बाद १ वर्ष तक वे चुपचाप अध्ययन व मनन में लगे रहे। सन् १८५२ में उन्हें फिर क़ानून के शिक्षण के लिए निमन्त्रित किया गया। और उसके बाद ६ वर्ष तक वे क्रमशः ज़ूरिच, ब्रेसलौ और वर्लिन में कानून के प्रोफ़ेसर रहे।

सन् १८७५ मे लीपज़िग मे वे अपराधशास्त्र के अध्यापनार्थ बुलाए गए। सन् १८८२ मे चुनाव के प्रश्न को लेकर उन्होंने विस्मार्क का ज़ोरदार विरोध किया। इस संबंध मे अनेक सभाओं मे उन्होंने भाषण भी किए और लेख भी लिखे, जिनसे विस्मार्क विचलित हो उठे और उन्होंने मानहानि का अभियोग चला दिया। उस अभियोग से मामसन बाल-बाल बच गए। पर इस बार के पाठ ने उन्हें बहुत कुछ सिखा दिया और उन्होंने जर्मनी की आन्तरिक राजनीति मे हस्तक्षेप न करने का निश्चय कर लिया।

व्यावहारिक राजनीति मे पटु न होने पर भी मामसन के प्रकाण्ड पाण्डित्य का लोहा जर्मनी में सब मानते थे। उनके अनेक शिष्यों ने इतिहास मे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करली थी।

सन् १८८० मे एक ऐसी दुर्घटना हो गई जिसका प्रभाव मामसन के मन पर जीवन भर रहा। उन दिनों मे वे चार्लाटन वर्ग में थे। जिस मकान मे वे रहते थे उसमें आग लग गई जिससे उनका विशाल पुस्तकालय, जिसमें इतिहास के अनेक बहुमूल्य और दुर्लभ ग्रंथ संगृहीत थे, भस्म हो गया। उनके मित्रों और शिष्यों ने इस दुर्घटना का समाचार सुना तो मामसन के पास अपनी-अपनी संग्रह की हुई इतिहास की अनेक उत्तमोत्तम पुस्तकें भेजीं। पर उससे क्या हो सकता था! संसार

के सारे पुस्तकालय मिलकर भी मामसन की उस अमूल्य निधि की क्षतिपूर्ति न कर सकते थे ।

इतिहास-लेखन कार्य में मामसन की अपनी निराली शैली थी। वे इतिहास के एकत्व में विश्वास रखते हैं और किसी देश का इतिहास प्रस्तुत करते समय उस देश के एवं संसार के गूढ ऐतिहासिक सिद्धान्तों का तात्त्विक विवेचन भी करते जाते थे जिससे पाठक को मूलतत्त्व हृदयंगम करने में बहुत बड़ी सहायता मिलती है।

नोवेल-पुरस्कार के अतिरिक्त मामसन को अपने जीवनकाल में ही दो बड़े-बड़े सम्मान और भी प्राप्त हुए। एक सन् १८७८ में—नोवेल-पुरस्कार के पूर्व ही—जब कि इटली के सम्राट् ने उन्हें 'एस० एस० मारिस एण्ड लेज़ारस' (S. S. Maurice and Lazarus) का महत्त्वपूर्ण पदक प्रदान किया, जो योरप के सर्वश्रेष्ठ सम्मानों में एक समझा जाता है, और दूसरा सन् १९०२ में—उनकी मृत्यु के केवल एक वर्ष पूर्व—सत्तरवीं वर्षगाँठ के अवसर पर—जब कि आक्सफर्ड विश्वविद्यालय के ६२ विद्वानो के हस्ताक्षरयुक्त एक मानपत्र उन्हें प्रदान किया गया था।

मामसन की निम्नलिखित पुस्तकें अधिक प्रसिद्ध हैं—

Romanorum. History of Rome. Corpus Inscriptionum Latınarum. Digesta Recognovit. The Provinces of the Roman Empire.

जार्नस्टर्न जार्नसन

जन्म . सन् १८३२ मृत्यु : सन् १६१०

सन् १६०३ के साहित्यिक नोबेल-पुरस्कार विजेता जार्नस्टर्न जार्नसन (Bjornstjerne Bjornson) नार्वेजियन थे । ८वीं दिसम्बर सन् १८३२ को विकने (Kuikne) में उनका जन्म हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा घर के पास-पड़ोस के छोटे स्कूलो मे समाप्त कर १७ वर्ष की आयु मे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे क्रिश्चियानिया विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए जहाँ उनका परिचय कवि इब्सन से हो गया, जो उन दिनों उक्त विश्वविद्यालय मे अध्ययन कर रहे थे। कुछ ही समय पश्चात् यह परिचय प्रगाढ मैत्री के रूप में परिणत हो गया जो जीवन भर स्थायी रही। इब्सन जैसे प्रतिभावान् कलाकार का निकट-सम्पर्क निस्सन्देह जार्नसन के लिए बहुमूल्य प्रमाणित हुआ, क्योंकि उनकी साहित्य की ओर सत्प्रवृत्ति उसी सम्पर्क का फल था।

विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त करके जार्नसन भ्रमण करने को निकले और उन्होंने स्वेडन व डेनमार्क का भलीभाँति पर्यटन किया। इस पर्यटन मे उन्हें जनता का ठीक रूप देखने को मिला और उनकी वस्तुस्थिति की जानकारी कई गुना बढ गई। जार्नसन की परवर्ती रचनाओं मे इस जानकारी की छाप स्पष्टतया दिखलाई देती है। डेनिश साहित्य उन्हें बहुत प्रिय था। यहाँ तक कि उन्होंने डेनमार्क के लेखकों के सभी प्रसिद्ध ग्रथों का अनुशीलन किया था, जिसके लिए उन्हें २ वर्ष तक कोपेन हेगन मे ठहरना पड़ा था।

कोपन हेगन मे रहते हुए जार्नसन ने सैकड़ों कहानियाँ लिखीं जो नार्वे के प्रसिद्ध पत्र (Folkebad) मे धारावाहिक रूप से छपी। इन कहानियों के कारण पठित-समाज का ध्यान विशेष रूप से उनकी ओर आकृष्ट हुआ।

सन् १८५७ मे उनका प्रथम उपन्यास (Synnove Solbakken) प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की चर्चा पठित-समाज में बहुत अधिक हुई। इसके बाद सन् १८५८ में उनका दूसरा उपन्यास (Arne) प्रकाश में आया। इसका स्वागत भी पहिले उपन्यास के समान ही हुआ। इसके बाद उनके दो उपन्यास (A Happy Boy) और (The Fisher Maiden) प्रकाशित हुए जो न केवल नार्वे
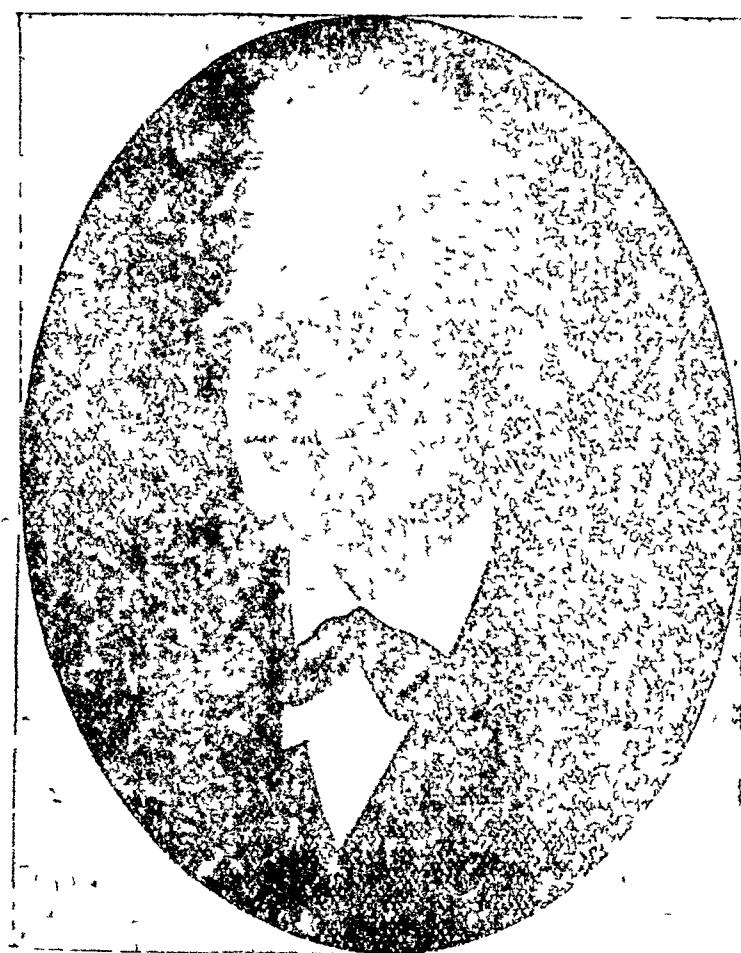
जार्नस्टर्न जार्नसन

में, जर्मनी में भी बड़े चाव से पढ़े गए। इस प्रकार एक उत्कृष्ट कथाकार

के रूप में उनकी प्रसिद्धि जब इन दोनों देशो में व्याप्त हो गई तब ओसलो थियेटर का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ और उसने जार्नसन को अपने प्रबन्धक का पद प्रदान किया।

सन् १८८० में अमेरिका का सामाजिक जीवन और वहाॅ की राजनीति का अध्ययन करने के विचार से जार्नसन ने अमेरिका की यात्रा की। पर उनसे भी पहिले उनकी ख्याति वहाॅ पहुॅच चुकी थी। वे जहाॅ-जहाॅ गए उनका स्वागत हुआ और जनवर्ग व शासकवर्ग के अनेक गण्यमान्य व्यक्तियों ने उनसे भेंट की। एक वर्ष तक अमेरिका के भिन्न-भिन्न स्थानों मे भ्रमण करने के पश्चात् वे फिर नार्वे लौट आए। नार्वे-निवासियों ने अपने इस महान् साहित्यिक का उस अवसर पर हृदय खोलकर स्वागत किया।

अमेरिका भ्रमण ने जार्नसन के जीवन में एक नया अध्याय जोड़ दिया। अब वे न केवल अपने को राजनीतिज्ञ मानने लगे थे, देश के राजनीतिक कार्यों में खुले खज़ाने भाग भी लेना चाहते थे। स्वदेश लौटते ही वे अपने इस रूप में प्रकट होने लगे। इनके लौटने के १७ वें दिन नार्वे में 'नार्वे का जन्म दिन' मनाया गया जिसमें प्रधान कार्य्य वरजीलैण्ड के स्मारक का उद्घाटन था। इस अवसर पर जार्नसन ने दस सहस्र जनता के सामने बडे उत्साह और ओजस्विता के साथ अपना प्रथम राजनैतिक भाषण दिया। इस भाषण में उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वे अब विधान (Constitution) के पूर्ण ज्ञाता बन गए हैं।

इस समारोह को समाप्त हुए अभी कुछ ही दिन व्यतीत हुए थे कि जार्नसन ने एक नया प्रश्न नार्वे के राष्ट्रीय झण्डे का लोगों के सामने रख दिया। अब तक नार्वे को स्वेडन मे सम्मिलित माना जाता था और दोनों का मिलित एक ही झंडा था। वह बात जार्नसन को पसन्द नहीं थी। वे नार्वे को एक पृथक् राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे। नार्वे की तत्कालीन सरकार उनके इस दृष्टिकोण को सहन न कर सकी। फल यह हुआ कि इन्हें नार्वे से भाग कर जर्मनी मे शरण लेनी पड़ी।

जर्मनी में उन्हे अपने राजनैतिक विचारों के प्रचार का उपयुक्त अवसर मिला। उन्होने विभिन्न राजनैतिक पत्रो में लेख लिखने आरम्भ किए। एक साल तक यह क्रम बराबर चलता रहा। सन् १८८२ में वे फिर नार्वे लौट आए। पर देश का राजनैतिक वातावरण तब भी उनके अनुकूल नही हुआ था। अतएव उन्होंने उधर से हाथ खींच लिया और एकान्त चित्त से काव्य की आराधना करने लगे।

यो तो जार्नसन ने दर्जनो उपन्यास और नाटक भी लिखे हैं, तथा अन्य कई विषयो पर भी स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी है, जिनकी संख्या सैकड़ों तक पहुँचती है, पर गीत लिखने में उन्हें सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है। उनके गीत नार्वे में संगीतज्ञों से लगाकर स्कूल के बच्चों तक को कंठाग्र है। उनका प्रसिद्ध गीत संग्रह 'सिगार्ड दी वेस्टार्ड' (Sigurd the Bastard) योरप में आज तक सर्वप्रिय बना हुआ है।

जार्नसन के नाटको ने भी अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की है। योरप के अनेक रंगमंचो पर उनके जीवन काल में ही उनके नाटको के अभिनय अनेक बार हुए थे। 'दी किंग' (The King) और 'दी बेंक्रप्ट' (The Bancrupt) नामक उनके दो नाटक सबसे अधिक प्रख्यात हुए हैं। उनमें विनोद और व्यंग्य की पर्याप्त पुट देते हुए अनेक जटिल सामाजिक एवं राजनैतिक प्रश्नो को हल करने का कलापूर्ण प्रयत्न दिखाई देता है। उनके समस्त नाटको के संग्रह २ मोटी-मोटी जिल्दों में, समस्त उपन्यासो का संग्रह १३ मोटी-मोटी जिल्दो में और सम्पूर्ण कविताओ का संग्रह २ मोटी-मोटी जिल्दो में प्रकाशित हुए हैं।

फ़्रेडरिक मिस्ट्रल

जन्म : सन् १८३०　　　　　　　　मृत्यु : सन् १९१४

सन् १९०४ का पुरस्कार, जैसा कि हम पीछे कह आए हैं, दो विद्वानों में बराबर-बराबर बाँट दिया गया था। उनमें से पहले फ़्रेडरिक मिस्ट्रल (Frederic Mistral) थे। ये फ्रांस के उस प्रदेश के रहने वाले थे जिसे प्रोविन्स कहा जाता है। प्रोवेन्स समस्त फ्रांस में पिछड़ा हुआ, दकियानूसी और सभ्यता की दृष्टि से अत्यन्त हीन समझा जाता है। इस प्रदेश की अपनी पृथक् भाषा है जो अपरिमार्जित है क्योंकि वह व्यवहार से दूर पड़ गई है। जहाँ फ़्रेंच भाषा, अपनी व्यवहारोपयोगिता, माधुर्य, उच्चारण सौकर्य और प्रकाण्ड साहित्य भाण्डार के बल पर न केवल फ्रांस की, योरप के और अनेक देशों की भी राष्ट्रभाषा बनी हुई है, वहाँ प्रोविन्शियल, हमारे देश की व्रजभाषा की भाँति, सर्वथा संकुचित और ऐकान्तिक जीवन व्यतीत कर रही है। न उसका कुछ साहित्य है, न व्याकरण और न परम्परा।

इस अवस्था में प्रोविन्शियल में महाकाव्य लिख कर, और ऐसा महाकाव्य लिखकर जो समस्त योरप में होमर के बाद दूसरा है और जिसे विद्वान् होमर के समकक्ष ही समझते हैं, मिस्ट्रल ने वही कार्य किया है जो गोस्वामी तुलसीदास जी ने अवधी में अपना रामचरित-मानस लिखकर, या मीरा ने राजपूताना की लोकभाषा में अपने गीत गाकर किया है। इन महान् प्रतिभाओं के हृदय के रस से सिक्त होकर ये ग्रामीण भाषायें अजर-अमर हो गई हैं और अपनी समकक्ष दूसरी भाषाओं के सामने सीना तान कर खड़ी हो सकती हैं।

कविता की ओर मिस्ट्रल की प्रवृत्ति बचपन से ही थी। वे फ़्रेंच में छोटी-छोटी तुकबन्दियाँ बचपन से ही करने लगे थे। उनके पिता एक बड़े भूभाग के स्वामी थे। उनकी इच्छा थी कि मिस्ट्रल वकील बनें

जिससे अपनी ज़मींदारी का काम ठीक से सँभाल सके। पिता के आज्ञानुसार मिस्ट्रल ने कानून का अध्ययन तो किया पर उसे व्यवसाय के रूप में वे न अपना सके।
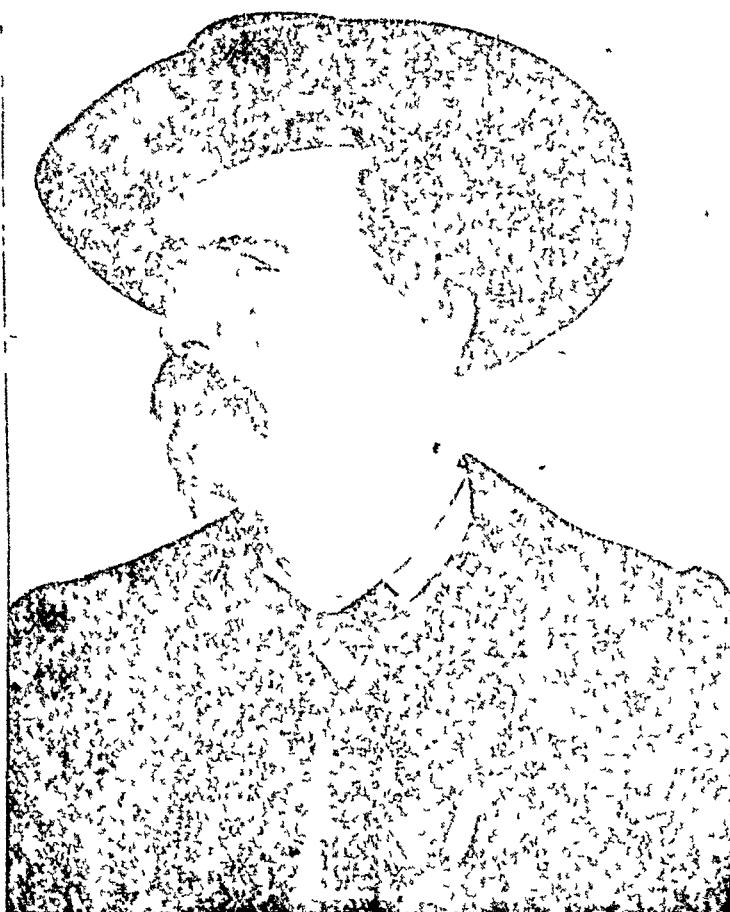
फ्रेडरिक मिस्ट्रल

होमर और वर्जिल मिस्ट्रल के आदर्श और प्रिय काव्य थे। उनके सैकड़ो पद उन्हें कण्ठस्थ थे जिन्हें वे एकान्त में रस ले-लेकर गुनगुनाया करते थे। होमर की रचना भी, जैसा कि प्रसिद्ध है, ग्रामीण भाषा में

हुई है। इसी से मिस्ट्रल को अपनी मातृभाषा प्रोविंशियल का उद्धार करने की प्रेरणा मिली। उन्होंने बचपन ही से निश्चय कर लिया कि वे जो कुछ कविता करेंगे, प्रोविंशियल मे ही।

अपना साहित्यिक कार्य उन्होने वर्जिल की कुछ पंक्तियों के प्रोविशियल अनुवाद से प्रारभ किया। इसके वाद सन् १८५४ में रोमेनिल आवानिक और कुछ और मित्रों के सहयोग से उन्होने 'फ़ेलीब्रिज' नामक सस्था स्थापित की जिसका उद्देश्य प्रोविंशियल का उद्धार करना था। इसी सस्था में रहते हुए मिस्ट्रल ने पॉच वर्ष उपरान्त अपना प्रख्यात महाकाव्य 'मीरियो' Mireio) लिखा।

कथानक की दृष्टि से 'मीरियो' एक प्रेम - प्रधान रचना है जो दुखान्त है। एक धनिक की एक मात्र पुत्री एक निर्धन युवक के प्रेमपाश में आबद्ध होकर माता-पिता द्वारा घर से निकाल दी जाती है। वह जगलों की खाक छानती है—इस आशा मे कि शायद कहीं उसकी भेंट उसके प्रियतम से हो जाय। अन्त मे वह भटकती-भटकती ट्रॉयस मेरी के गिरजा-घर में पहुंचती है। जहाँ अत्यन्त क्षीणावस्था मे अपने माता-पिता और प्रेमी की उपस्थिति मे उसकी मृत्यु हो जाती है। इस कथानक में कुशल कलाकार मिस्ट्रल ने प्रोविन्स के रीति-रवाज, प्राकृतिक दृश्य, रहन-सहन, बोलचाल, जीवन और आचार-विचारों का ऐसा सुन्दर समावेश किया है कि उनका महाकाव्य प्रोविन्स का एक सवाक् अमर-चित्र वन गया है।

फ्रान्स की विद्वित्परिषद् 'फ्रेञ्च एकेडेमी' ने मेरियो पर सव से प्रथम अपना साहित्यिक-पुरस्कार देकर मिस्ट्रल के महान् अभ्युत्थान का मार्ग प्रशस्त कर दिया। समस्त योरपीय भाषाओं मे 'मेरियो' का अनुवाद हुआ और वह लाखों पाठकों का हृदय-हार बन गया। प्रेमी नवयुवक और नवयुवतियाँ चलते-फिरते उसके गीत दोहराने और मेरियो के निराशापूर्ण शब्दों में अपने प्रेमी हृदयों का प्रतिविंव देखने लगे। 'मेरियो' इस प्रकार योरप के सामाजिक जीवन का एक आवश्यक उपकरण वन गया।

सन् १८७६ में मिस्ट्रल ने फ्रांस की एक परम सुन्दरी तरुणी मिल मेरी रिविर से विवाह किया। उसी वर्ष उनका एक नया काव्य-संग्रह (Les Isles d' Or) नाम से प्रकाशित हुआ। उसके कुछ समय पश्चात् उनके (Coupe और Plincesse नामक) दो छोटे-छोटे ग्रंथ और भी प्रकाशित हुए। इन ग्रंथो ने राजन्यवर्ग और प्रजावर्ग दोनो को समान रूप से अप्रसन्न कर दिया। उन लोगो का कथन था कि मिस्ट्रल ने अपनी इन दोनो कृतियो द्वारा उत्तरी फ्रास और दक्षिणी फ्रास में मतभेद उत्पन्न करने का घृणित प्रयत्न किया।

सन् १६०४ में इन्हे नोबेल पुरस्कार प्रदान करते हुए एकेडेमी ने घोषित किया था—"मिस्ट्रल की अपूर्व मौलिकता के, उनकी कविता की वास्तविक कलात्मक प्रतिभा के, जिसमें एक स्वच्छ दर्पण की भाँति उनके देश की आत्मा का यथार्थ प्रतिबिंब उद्भासित हुआ है और उनके प्रोविन्स भाषा-विज्ञान के उपलक्ष में उन्हें यह पुरस्कार प्रदान किया जा रहा है।"

मिस्ट्रल का स्वभाव अत्यन्त विनीत था। वे प्रशंसा और आत्म-विज्ञापन से वहुत घबड़ाते थे। फ्रेञ्च एकेडेमी उन दिनो संसार की एक प्रतिष्ठित संस्था मानी जाती थी और उसके अधिकारी की वहुत प्रतिष्ठा थी। एकेडेमी ने यह पद जब मिस्ट्रल को देना चाहा, तब उन्होने उसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया। फिर भी नोबेल-पुरस्कार उन्होंने स्वीकार कर लिया। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि उन दिनो मिस्ट्रल आरलेस में फेलीब्रिज म्यूज़ियम खोलना चाहते थे जिसके लिए भूमि ख़रीदने के लिए उन्हे कुछ धन की आवश्यकता थी जो नोवेल प्राइज़ की रक़म से सहज ही पूरी हो गई।

'मोरियो' की एक सुन्दर भावोक्ति का अँग्रेज़ी अनुवाद इस प्रकार है—

If thou the moon wilt be,
Sailing in glory,

I'll be the halo white,
Hovering every night,
Around and over thee.
If thou become a flower
Before thou thinkest,
I'll be a streamlet clear,
And all the waters bear,
That thou love drinkest*

---

*यदि तू प्रभामंडल में विहार करनेवाला चन्द्र बनेगा तो मैं प्रकाश-मंडल बनकर प्रतिरात्रि तुझ पर और तेरे आस-पास चक्कर लगाऊँगी। यदि तू अनुमान से पहले फूल बन जायगा तो मैं निर्मल जल की धारा बन जाऊँगी और मेरा समस्त जल यही समझेगा कि तू प्रेम-पान कर रहा है।

जोज़ इज़ागिरी

जन्म : सन् १८३२　　　　मृत्यु : सन् १९१६

जोज़ इज़ागिरी (Jose Echegary) को भी सन् १९०४ में ही, मिस्ट्रल के साथ, नोवेल पुरस्कार प्रदान किया गया था। ये अपने समय के उच्च कोटि के कवि थे। पुरस्कार देते समय एकेडेमी ने इनके संबंध में कहा था—"जोज़ इज़ागिरी ने अपने प्रसिद्ध और विस्तृत साहित्यिक कार्यों द्वारा स्पेनिश नाटक साहित्य की महती परंपरा को पुनरुज्जीवित किया है। अतः यह पुरस्कार उन्हें सम्मानार्थ प्रदान किया जा रहा है।"

इनका जन्म मैड्रिड मे हुआ था। और वहीं शिक्षा दीक्षा भी हुई। ये अपनी कक्षाओं मे सदैव चोटी पर रहते थे। कॉलिज की शिक्षा समाप्त करने पर ये एक स्कूल मे गणित के अध्यापक नियुक्त हुए। गणित इनका प्रिय विषय था जिसकी छाप इनकी रचनाओं पर भी स्पष्टतया परिलक्षित होती है। राजनीति का भी ज्ञान इन्हें उच्चकोटि का था और वक्ता तो यह स्वभाव-सिद्ध ही थे। अपने इन गुणों के कारण स्पेन मे इनकी काफी ख्याति हो गई थी। स्पेन मे कुछ काल के लिए प्रजातन्त्र-सरकार की स्थापना होने पर शिक्षा और अर्थ-विभाग के प्रधान मंत्रित्व का पद जोज़ इज़ागिरी को ही सौंपा गया था जिसे इन्होंने योग्यतापूर्वक निवाहा। वर्वन राजवश के पुनरुद्भव पर प्रजातंत्र सरकार नष्ट हो गई और तव इज़ागिरी भी राजनीति से पीछा छुड़ाकर एकान्त साहित्यिक वन गए। साहित्य मे विविध अंगो पर अनेक पुस्तकों के लिखने पर भी इनकी ख्याति नाटकों के कारण सब से अधिक है। नाटकों का लिखना इन्होंने ४२ वर्ष की अवस्था से प्रारंभ किया था। इनका प्रथम नाटक (El Libro talonario) सन् १८७४ मे प्रकाशित हुआ था जो अत्यधिक सफल कहा गया था। इसके वाद इन्होंने लगभग ५० नाटक और लिखे जिनमे से कुछ उच्चकोटि के हैं, कुछ साधारण कोटि के। इनके नाटकों पर सामयिकता की छाप वहुत अधिक है, अतएव वे स्थायी साहित्य की वस्तु नहीं समझे जा सकते। फिर भी उन नाटकों के कथानक और उनके निर्वाह का ढग सुव्यस्थित है जिनसे इजागिरी का गणितज्ञ होना सहज ही परिलक्षित हो जाता है। कला और रगमच की दृष्टि से भी वे पूर्णतया सफल कहे जाते हैं।

इनकी निम्नाकित कृतियॉ वहुत प्रसिद्ध हैं—

La Esposa del Uen iagor, La Ultima Notbe, O Locura O Santidad En el pilar y en la Cruz En el Muerte Mar Sin Orillas El gran Galeoto Con flicto Seno de la entre dos deberes Dos Fanatismos

हेनरिक सीन्कीविच

जन्म : सन् १८४६

सन् १९०५ के साहित्यिक नोबेल-पुरस्कार के विजेता हेनरिक सीन्कीविच (Henryk Sienkiewicz) रूस-अधिकृत पोलैण्ड के

हेनरिक सीन्कीविच

निवासी थे। उनका जन्म वोलाओकरज़ेस्का नामक स्थान में एक सामान्य

गृहस्थ के घर हुआ था। यह स्थान वर्तमान लिथुआनिया के अंतर्गत है। दर्शनशास्त्र उनका प्रिय विषय था और उसी को लेकर वारसा विश्वविद्यालय से उन्होंने डिग्री प्राप्त की थी।

सन् १८६३ के राजनीतिक विप्लव के समाप्त हो जाने पर सीन्कीविच ने रूस की यात्रा की और वहां से फिर सन् १८७६ मे अमेरिका यथा योरप का भ्रमण किया। अमेरिका और वहाँ के जीवन के संबंध में उन्होंने कई लेख धारावाहिक रूप से Gazeta Polska में छपवाए जो खूब पढे गए। इन लेखों के कारण न केवल सीन्कीविच की प्रसिद्धि हुई, उक्त गजट की ग्राहक-संख्या भी बहुत बढ गई। सन् १८८० में वे घर लौट आए। उसी वर्ष उनकी प्रिय पत्नी का देहान्त हो गया था। इस प्रकार प्रेम का एक कठिन बन्धन टूट जाने पर सिन्कीविच बहुत कुछ निश्चिन्त हो गए और साहित्य की सेवा में जुट गए।

ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों मे हेनरिक सिन्कीविच का बहुत उच्च स्थान है। पोलैण्ड के यही एक महान् लेखक ऐसे हैं जिनके उपन्यासों का अंग्रेज़ी में अनुवाद करते हुए अंग्रेज साहित्यिकों ने गौरव अनुभव किया है। अन्यथा पोलिश ग्रन्थों के अंग्रेज़ी अनुवाद प्रायः नहीं के बराबर हुए हैं।

सीन्कीविच को नोबेल-पुरस्कार उनके अद्वितीय ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए दिया गया था, यद्यपि उन्हें योरप में सर्व-विख्यात बनाने का कारण उनकी एक पुस्तक (Quo Vadis) है। इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में प्राचीन धार्मिक पुस्तकों के आधार पर यह प्रमाणित किया गया है कि पशुबल पर विजय केवल दैवी सत्यबल-द्वारा ही पाई जा सकती है। नीरो के शासनकाल मे रोमन समाज की दुर्दशा का चित्रण इसमें ऐसे ढंग से किया गया है कि पढते-पढते रोमाच हो जाता है। इस ग्रन्थरत्न का अनुवाद ससार की प्रायः समस्त भाषाओं में हो चुका है और इसका फ़िल्म भी बन गया है जो योरप में आज दिन बड़े चाव से देखा जाता है।

दर्शन और धर्म के पश्चाद्भूमि में रहने के कारण सीन्कीविच की अधिकांश रचनाएँ धार्मिक बन गई हैं और उन्हें पढ़ते-पढ़ते सच्ची शान्ति मन में उसी प्रकार भरने लगती है, जिस प्रकार तुलसीकृत रामायण या रवीन्द्रनाथ ठाकुर की नैवेद्य आदि पुस्तकें पढ़ते समय। यह इनकी रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता है। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं—

With Fire and Sword. The Deluge. Pan Michael. Quo Vadis. In Desert and Wilderness. On the Field of Glory. On the Bright Shore.

जिओसू कारडूकी

जन्म : सन् १८३६ मृत्यु : सन् १९०७

साहित्य में सन् १९०६ का पुरस्कार प्राप्त करनेवाले महाकवि कारडूकी (Giosue Carducci) इटली के निवासी थे। उनके पिता चिकित्सक का व्यवसाय करते हुए भी अपने राजनीतिक विचारों में बड़े उग्र थे। उनके यहाँ राज-विद्रोहियों का प्रायः जमाव रहा करता था जिससे इटली की तत्कालीन सरकार के मन में उनके प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया था। सन् १८३१ की क्रान्ति के असफल हो जाने पर जब अन्य क्रान्तिकारियों को कठोर सजाएँ दी गई तब उन्हें भी कारागार में डाल दिया गया। यह घटना कारडूकी के जन्म से कुछ वर्ष पूर्व की है।

२७ जुलाई सन् १८३६ को तस्केती के 'वाल-द-केसेलो' में कारडूकी का जन्म हुआ। 'पिसा' विश्वविद्यालय मे शिक्षा-दीक्षा हुई और अध्यापन कार्य से उन्होने अपना सासारिक जीवन आरम्भ किया। १८ वर्ष की अवस्था से ही वे अच्छी कविता करने लगे थे। इन कविताओं मे कभी-कभी चर्च पर भी आक्षेप होता था, पर इस प्रकार कि उन्हें कानूनी शिकजे में नहीं जकडा जा सकता था। फिर भी शासनाधिकारी इन व्यग्यों से तिलमिला उठते थे। अधिकारी उनमे पिता के राजनीतिक विचारों का बीज देख रहे थे और इसी कारण इन पर सन्देह भी करने लगे थे। पर कारडूकी ने सच्चा कवि-हृदय पाया था, निर्भीक और अबाध! अधिकारियों से वे न दब सकते थे, न अपने उद्देश्यों और सिद्धान्तों से विचलित ही हो सकते थे। इस आभ्यन्तरिक संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि चर्च की ओर से कारडूकी के सामाजिक जीवन मे बाधाएँ उपस्थित की जाने लगीं। सबसे पहले इनकी आजीविका पर चोट की गई। इन्हें किसी स्कूल में पढ़ाने से निषेध कर दिया गया।

भाग्याकाश में कारडूकी के लिए इन दिनों और भी काले धब्बे थे जो क्रमशः अपना रूप स्पष्ट करने लगे। कारडूकी के पिता की मृत्यु हो गई। उनके भाई दान्ते ने आत्महत्या करली। इस पर भी कारडूकी निराश नहीं हुए। इस समय उनके अँधेरे भाग्य में प्रकाश की केवल एक ज्योति थी, उनकी पत्नी, जिसे कारडूकी प्राणों से अधिक प्यार करते थे और वह भी उन्हें अत्यधिक प्यार करती थी। उसके साथ रहते हुए कारडूकी को सासारिक विघ्न-बाधाओं की रत्तीभर परवाह नहीं थी।

कारडूकी के चार संतानें हुईं उन्होंने अपने एक पुत्र का नाम दान्ते रक्खा था। इटली में इसी नाम का एक महाकवि हो चुका है जिसकी रचनाएँ कारडूकी का साहित्यिक लक्ष्य थीं। कुछ इस अभिप्राय से और कुछ अपने दिवंगत भाई की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए कारडूकी ने अपने पुत्र का यह नाम रख छोड़ा था। वे अपने इस पुत्र को अत्यधिक प्यार करते थे।

दुर्भाग्य से तीन वर्ष की अवस्था में उनके इस पुत्र की मृत्यु हो गई। यह घटना कारडूकी के जीवन की सबसे अधिक दुःखद घटना थी, जिसने उनकी विचार-धारा को एक गहरा आघात पहुँचाया। अब

जिओसू कारडूकी

वे सचमुच 'रस-सिद्ध-कवि' वन गए। इन दिनों वे मिस्टिया में लेटिन व ग्रीक के प्रोफ़ेसर थे।

कारडूकी के रससिक्त और भावुक हृदय से इन्हीं दिनों (Hymn to Satan) नामक एक प्रसिद्ध रचना निकली, जिसने उन्हें एक साथ

प्रसिद्ध कर दिया। इसके बाद उनकी और भी उत्तमोत्तम कविताएँ प्रकाश में आईं। इन रचनाओं ने न केवल जनता के मन मे कारडूकी के प्रति आदर उत्पन्न कर दिया, सरकार ने भी उन पर सन्देह करना छोड़ दिया। अब वे शिक्षा-विभाग के मंत्री बना दिए गए और साथ ही एक कॉलिज में प्रोफ़ेसर भी। इसी पद पर लगातार जीवन के अन्तिम ४६ वर्ष तक वे कार्य करते रहे।

कारडूकी की साहित्यिक प्रख्याति ने उनके आसपास अनेक शिष्यों को एकत्र कर दिया था। फ़ेरारी इनमे प्रमुख थे। ये शिष्य न केवल साहित्य में, राजनीति मे भी अपने गुरु कारडूकी के अनुवर्ती थे। इस प्रकार कारडूकी की इटली मे एक स्वतत्र राजनीतिक पार्टी भी बन गई थी।

देश-भक्ति और स्वतन्त्रता कारडूकी के मन मे कूट कूट कर भरी थी। इस दिशा में उनके उग्र विचार जीवन भर एक से बने रहे, यद्यपि इसके कारण उनके इष्ट-मित्र भी कारडूकी से प्राय अप्रसन्न रहा करते थे। अपनी एक कन्या का नाम भी इन्होंने 'लिबर्टी' (स्वाधीनता) रख छोड़ा था। उनकी कविताओं मे ये भावनाएं सर्वत्र दिखाई देती हैं। कविता के संबंध में कारडूकी के सिद्धान्त भी अपने विलक्षण ढग के थे। वे कहते थे कि जिस कविता मे शक्ति और सहानुभूति—ये दो गुण नहीं हैं, वह कविता ही नही है। वे देखते थे कि उन दिनों के कवियों की कविताएँ इन तीनों गुणों से रहित हैं। उनका मत था कि वर्त्तमान कविता के खोखलेपन का कारण केवल यही है कि व्यक्तियों के जीवन में शक्ति और सहानुभूति का अभाव है। जिस धर्म को (ईसाई धर्म से अभिप्राय है) लोग धर्म मानकर चल रहे हैं, जब उसी में इन दोनों गुणों का सर्वथा अभाव है तब उसके अनुयायियों में ये गुण कहाँ से आ सकते है। इससे अच्छे तो उन जातियों के धर्म हैं जिन्हें असभ्य कहा जाता है। उनमें सत्य और प्रेम का स्वाभाविक सम्मिश्रण देखने को मिलता है जब कि ईसाई धर्म मे इन्हें लेकर केवल वाग्जाल फैलाया जाता है।

एक बार इटली की सम्राज्ञी और सम्राट् ने कारडूकी को भेंट के लिए बुला भेजा। कारडूकी डरते-डरते मिलने गए। सोच रहे थे कि न जाने किस संकट का सामना करना पडे। राजकुल पर चर्च का पूर्ण प्रभाव था और चर्च कारडूकी की रचनाओं और निर्भीक धार्मिक आलोचनाओं से तंग आ चुका था। पर राजदम्पति इनके साथ अत्यन्त शिष्टता से पेश आए। उसी समय से कारडूकी सम्राज्ञी के प्रशंसक बन गए। कारडूकी की आर्थिक कठिनाई दूर करने के लिए सम्राज्ञी ने सर्वथा एक मौलिक उपाय से काम लिया। उन्होंने भारी रक़म देकर उनका पुस्तकालय मोल ले लिया और सब मूल्य तुरन्त चुकता भी करवा दिया। कुछ दिन बाद कारडूकी का पुस्तकालय फिर उन्हीं को लौटा दिया गया।

कारडूकी की वृद्धावस्था बड़े संकट में कटी। कुछ लँगड़े तो वह पहले ही से थे, बुढ़ापे मे पक्षाघात ने उन्हें और अशक्त बना दिया। इसी समय फ़ेरारी का भी देहान्त हो गया जिससे उन्हें बड़ा शोक हुआ। नोबेल-पुरस्कार की सूचना जब उनके पास पहुँची तब वे खाट पर से उठ सकने योग्य भी नहीं थे। स्वेडन की सरकार ने स्वय अपना प्रतिनिधि उनके घर पर भेजकर उसके द्वारा उन्हें सम्मानित कर दिया था। जीवन के विषय में कारडूकी का सिद्धान्त उनकी कविता के निम्नांकित एक उद्धरण से भली भाँति स्पष्ट हो जाता है—

> Vain are the Joys of the present,
> They come and they fade like a blossom.
> Only in death dwells the truth,
> And loveliness but in past days. *

इनकी कुछ कविताएँ इतनी सुन्दर हैं कि उनके जर्मन अनुवाद प्रसिद्ध कवि मामसन और पॉलोसे ने किए हैं।

---

*वर्तमान आनन्द मिथ्या हैं क्योंकि वे वसन्त की भाँति आते और झड़ जाते हैं। सत्य का निवास केवल मृत्यु में है और सुन्दरता केवल बीते हुए दिनों में निवास करती है।

रडयार्ड किपलिंग

जन्म · सन् १८६५ मृत्यु : सन् १९३६

Oh, East is East and West is West and
never the twain shall meet

(पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम : ये दोनों कभी मिल नहीं सकते ।) किपलिंग (Rudyard Kipling) की यह पंक्ति न जाने कितनी बार उद्धृत की गई है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने योरपभ्रमण के समय अनेक वार अपने व्याख्यानो में इसका उल्लेख करते हुए इसके विचारों को अग्राह्य वतलाया है । अपने 'पूर्व और पश्चिम' नामक भाषण में जो उन्होंने जर्मनी, आस्ट्रिया इत्यादि मे दिया था, स्पष्ट कहा है कि किपलिंग जैसे लोगों की यह धारणा कि पूर्व और पश्चिम कभी एक नहीं हो सकते, मिथ्या है। पूर्व पश्चिम को वहुत कुछ दे सकता है, और पश्चिम पूर्व को। और संस्कृतियों के आदान-प्रदान द्वारा दोनों एक दूसरे के निकट आ सकते हैं—मिलकर एक हो सकते हैं।

किपलिंग की इस पंक्ति के सम्बन्ध में प्रोफ़ेसर शेषाद्रि की यह सम्मति है कि इसे न समझकर लोगों ने किपलिंग के साथ अन्याय किया है। वास्तव मे किपलिंग का अभिप्राय यह नही था, जैसा लोग समझते हैं, कि पूर्व और पश्चिम में प्रभेद-भावना सदा वनी रहे। क्योंकि आगे चलकर उसी कविता मे, जिसकी यह पक्ति है, किपलिंग स्वयं लिखते हैं—

But there is neither East nor West,
Border nor breed, not birth,
When two strong men, stand face to face,
Though they come from the ends of the earth.*

---

*पर जब (फ़ौज की वारिकों में) दो सिपाही आमने सामने खड़े होते (और परस्पर वार्तालाप करने लगते) हैं तव वहाँ न पूर्व का विचार रहता है और न पच्छिम का। न सीमा का न नस्ल या उत्पत्ति का। यद्यपि वे दोनों पृथ्वी के दो विभिन्न सिरों से आते हैं।

नोबेल-पुरस्कार-विजेताओं में किपलिंग ही ऐसे हैं जिन्हें यह महत्त्व-पूर्ण पुरस्कार केवल ४२ वर्ष की अवस्था में ही प्राप्त हो गया था, जब कि कुछ लेखकों को यह गौरव नब्बे वर्ष की आयु में प्राप्त हुआ है।
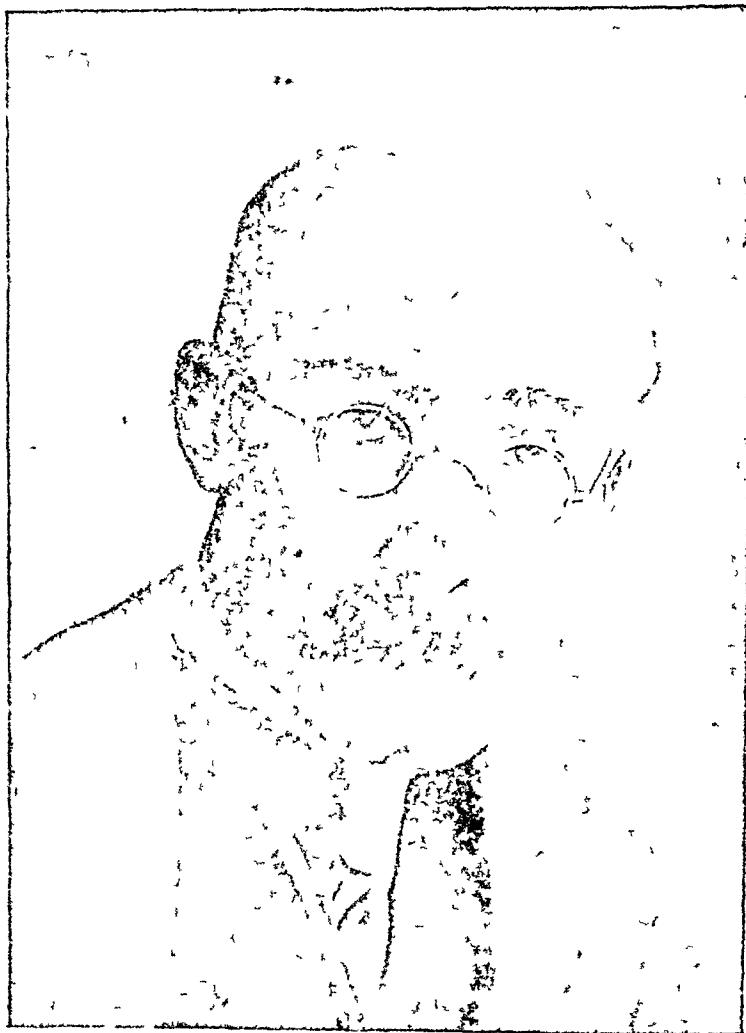
रुडयार्ड किपलिंग

किपलिंग के पिता—जान लाकवुड किपलिंग, कवि और चित्रकार थे। वे बहुत दिनों तक लाहौर के 'स्कूल ऑफ इण्डस्ट्रियल आर्ट' के हेड रहे थे। उन्हीं दिनों किपलिंग का जन्म बम्बई में हुआ था। अपनी

प्रसिद्ध कविता 'सेवन सीज़' (Seven Seas) में बम्बई का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं—

Mother of Cities to me
For I was born in her gate
Between the palms and the sea
Where the world-end steamers wait.*

रुडयार्ड किपलिंग का यह नाम पड़ने के संबंध में एक आख्यायिका कही जाती है। सन् १८६७ के ग्रीष्मकाल की एक संध्या को उनके पिता अपनी प्रेमिका मिस एलिस मेकडानल्ड के साथ इंगलैण्ड की प्रसिद्ध झील रुडयार्ड के पास टहल रहे थे। झील के तट के काव्यमय वातावरण ने दोनों के हृदय को इस प्रकार प्रेमाभिभूत कर दिया कि दोनों ने वहीं पर वैवाहिक सूत्र में बँध जाने की प्रतिज्ञा कर ली। उस सुनहली संध्या और उस प्रिय स्थान की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के उद्देश्य से ही उन्होंने अपने प्रथम पुत्र को रुडयार्ड नाम दिया।

किपलिंग की प्रारंभिक शिक्षा वेस्टवार्ड हो डेवनशायर (इंगलैण्ड) के 'यूनाइटेड सर्विसिज़ कालिज' में हुई। वह स्कूल भारतवर्ष के लिए आफ़िसर ढालने की एक प्रकार की फ़ैक्टरी था जिसका संचालन उन अवकाश-प्राप्त अँगरेज़ आफ़िसरों द्वारा होता था जो भारत में रहकर नौकरी कर चुकते थे। उन्हीं के लड़के उसमें शिक्षा पाते थे। स्कूल का वातावरण सैनिक था, अतः यह देखकर आश्चर्य होता है कि ऐसे स्थान में, टामियों के साथ रहते हुए, किपलिंग में काव्य का बीज किस प्रकार अङ्कुरित हो सका। जानकारों का कथन है कि स्कूल में फ़ौजी वातावरण से घिरे रहने पर भी उससे बाहर किपलिंग सदैव साहित्यिक

*यह मेरी मातृनगरी है (अथवा यह मेरे निकट सब नगरों की जननी है।) मैं उसके उदर से पैदा हुआ था। उन खजूर के वृक्षों और समुद्र के बीच में जहाँ संसार के विभिन्न देशों से आकर जहाज खड़े रहते हैं।

लोगों से मिलते जुलते थे। उनके मौसा बर्नजोन्स और प्वायन्टर सर्वथा साहित्यिक रुचि के व्यक्ति थे, जिनके साथ किपलिग गर्मी की छुट्टियाँ व्यतीत करते थे। कविता का बीज, पैतृक संस्कार के रूप में उनमें था ही, अनुकूल सत्संग में वह अंकुरित भी होता रहा। बचपन में ही अपने स्कूल की पत्रिका के लिए उन्होंने कई अच्छी-अच्छी कविताएँ लिखी थीं, जिनका संग्रह पीछे से प्रकाशित हुआ था। 'जान हेलीफेक्स जेण्टिलमैन' की लेखिका मिस मुलक के साथ भी किपलिग का घनिष्ट परिचय था और कला की ओर किपलिंग की अभिरुचि को अधिकाधिक प्रवृत्त करने का श्रेय उन्हें भी दिया जा सकता है। लण्डन के प्रख्यात लेखक जार्ज हूपर भी उनके परिचितों में थे। इन्हीं महान् साहित्यिकों के सत्संग का यह प्रभाव था कि टामियों का संपर्क और स्कूल का प्रतिकूल वातावरण किपलिग की साहित्यिक चेतना में व्याघात न डाल सके।

किपलिंग का बाह्य जनता से साहित्यिक संपर्क सर्वप्रथम पत्रकार के रूप मे हुआ। केवल सत्रह वर्ष की अवस्था में लाहौर के 'सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट' के संपादकीय विभाग में उन्हें काम मिला। City of dreadful nights में उन्होंने लाहौर का ही रेखा-चित्र उपस्थित किया है।

टामियों की दैनिक जीवन-लीला का सूक्ष्म निरीक्षण किपलिंग की रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है। यहाँ तक कि उनकी विलक्षण अँगरेज़ी और अनोखे उच्चारणों का समावेश भी सुन्दरता के साथ उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। भारत के प्रति इनकी श्रद्धा मातृ-भूमि जैसी थी। उनकी अधिकाश कविताएँ भारतीयता के रंग में रँगी दिखाई देती हैं। इनकी एक कहानी का शीर्षक 'नौलखा' है। कहते हैं, यह कहानी किपलिग और उनकी पत्नी केरोलाइन स्टार ने मिलकर लिखी थी।

किपलिंग ने संसार के सभी प्रधान देशो का भ्रमण किया और अपने यात्रा-संबंधी अनुभवों से काफ़ी लाभ उठाया। सन् १६०७ में

नोबेल-पुरस्कार प्रदान करते समय एकेडेमी ने इनके संबध में लिखा था—"अनुभूति की व्यापकता, कल्पना की मौलिकता और पुरुषोचित शक्ति किपलिंग की रचनाओं के प्रधान गुण हैं।"

किपलिंग की निम्न पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—

Departmental Ditties. Plain Tales from Hills. Soldiers Three. The light that failed. Life's Handicap. Ballads and Barrack room Ballads. Many Inventions. The Jungle Book. The Naulakha, Stalky and Co From Sea to Sea. Kim, Just So Stories. The Five Nations, Land and Sea Tales for Boys and Girls. Debits and Credits. A Book of Words.

रुडोल्फ़ यूकन

जन्म : १८४६ मृत्यु : १९२६

सन् १९०८ का पुरस्कार दार्शनिक अन्वेषण तथा तात्त्विक विवेचन के उपलक्ष में जर्मन दार्शनिक (Rudolf Eucken) यूकन को मिला। उनका जन्म ईस्ट फ़िशिया के आरिच नगर में हुआ था। १८ वर्ष की अवस्था में उन्होंने गाटिङ्गन-विश्वविद्यालय में प्रवेश किया और वहाँ से डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। सन् १८७४ मे कूनो फ़िशर का स्थान रिक्त होने पर जेना में उन्हें दर्शनशास्त्र के अध्यापक का पद मिला जहाँ वे सन् १९२० तक रहे।

यूकन का जीवन सीधा-सादा और सरल एकनिष्ठ दार्शनिक का जीवन था। धारणा शक्ति बड़ी प्रकाण्ड थी। व्याख्यान कक्षा में भी

से विरक्ति हो रही थी और वे लोग भौतिकता की ओर तेज़ी से चढ़ रहे थे। वे मानने लगे थे कि अध्यात्मवाद कोरी बकवाद है, इससे संसार में शान्ति स्थापित करने का स्वप्न देखना मूर्खता है। उसी समय यूकन की पुस्तकों ने वहाँ के भौतिक विश्वास मे भारी उथल-पुथल पैदा कर दी। उन्होंने अपनी दार्शनिक और ऐतिहासिक पुस्तकों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि भौतिकता जीवन का एक अल्पतम भाग है। प्रधान भाग तो आत्मा का क्षेत्र ही है। वही अधिक विकसित है। इनका सिद्धान्त है—

"That man is the meeting place of nature and of spirit and that it is his duty and privilege to overcome this non-spiritual nature by incessant active striving after the spiritual life which involves all facylties, especially will and intention"*

अर्थात् उनके मत से मानव सत्ता आध्यात्मिक सत्ता का विस्तृत अनुभव और अनुभूति है।

'दी ट्रुथ आफ़ रिलीजन' (The Truth of Religion) उनकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है जिसे उन्होंने स्वेडन के सम्राट किंग ओसर द्वितीय को समर्पित किया है।

यूकन की धर्म-भीरुता प्रसिद्ध है। पर धर्म के वे अंध अनुयायी कभी नहीं रहे। अपनी दो पुस्तकों 'क्रिश्चियानिटी और न्यू आइडियालिज्म'—(Christianity and New Idealism) और 'केन वी स्टिल बी क्रिश्चियन्स' (Can We Still be Chustians) में उन्होंने ईसाई धर्म की समीक्षा बड़ी तात्त्विकता से की है। हार्वर्ड,

---

*मनुष्य प्रकृति और आत्मा का सम्मिलन स्थान है। उस आध्यात्मिक जीवन के लिए अध्यवसाय करते हुए जो समस्त शक्तियों विशेषतया इच्छा और संकल्प को आवृत किए हुए है, अचेतन प्रकृति पर विजय प्राप्त करना उसका कार्य और अधिकार है।

कोलम्बिया आदि विश्वविद्यालयों में भी उनके धार्मिक विश्वास पर कई महत्त्वपूर्ण भाषण हुए थे जिन पर संसार के अनेक प्रख्यात विचारकों ने सामयिक पत्रों में टीका-टिप्पणी की थी। उनके पश्चात् अनेक बार वे हालैण्ड, फ्रांस और इंगलैण्ड में भी व्याख्यानों के लिए आमंत्रित किए गए।

यूकन की निम्न पुस्तकें अधिक प्रसिद्ध हैं:—

Problem of Human Life as viewed by the great thinkers from Plato to the present time. Life's basis and Life's Ideal The meaning and value of life. Main Currents of Modern Thought. Truth of religion. Knowlege and Life. Theory of Knowledge.

सेल्मा लेजरलाफ़

जन्म : सन् १८५८

नोबेल-पुरस्कार प्राप्त करनेवाली प्रथम साहित्यिक महिला सेल्मा लेजरलाफ़ (Selma Lagerlof) स्वेडन की रहने वाली हैं। वर्मलैण्ड के मारबेक नामक स्थान में इनका जन्म २० नवम्बर को हुआ था। पिता फ़ौज में लेफ़्टिनेण्ट थे और माता स्वेडन के सचित्र-परिवार की रत्न थीं। इस प्रकार घर में न धन की कमी थी, न प्रतिष्ठा की। सेल्मा का बचपन बहुत सुख से बीता। घर पर कुछ शिक्षा प्राप्त करने के बाद ये अध्यापिका बन गईं और उसी अवस्था से साहित्य-सेवा का व्रत ले लिया। इनके साहित्य का आरंभ बड़े विचित्र ढङ्ग से हुआ। अन्य देशों की भाँति इनके प्रदेशों में भी ग्राम-गीतों और ग्रामीण कहानियों की भरमार थी। उन

गीतों और कहानियों में सेल्मा को अपूर्व रस मिला करता था। जो भी परिचित इनसे मिलने आता उससे ये कोई कहानी या ग्रामगीत अवश्य सुनतीं। यह चाव यहाँ तक वढ़ा कि अध्यापिका हो जाने पर पढ़ना-पढ़ाना एक ओर रख ये अपने विद्यार्थियों से ग्रामगीतो और कहानियों की चर्चा किया करतीं। इनका कथन था कि ग्राम-साहित्य में सच्चे काव्य की निर्वन्ध आत्मा के दर्शन होते हैं। हमारे देश मे जिस प्रकार ढोला मारू आदि की कहानियाँ प्रचलित हैं उसी तरह सेल्मा के प्रदेश में गोस्टा वर्लिंग के नाम पर बहुत-सी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। सेल्मा ने इन कहानियों को संग्रह करके कलात्मक ढङ्ग से साहित्यिक रूप दे दिया। इससे इनकी वहुत अधिक ख्याति हो गई। उस समय इनकी अवस्था कुल ३६ वर्ष की थी।

इसके ३ वर्ष वाद इनका उसी ढङ्ग का दूसरा कहानी-संग्रह (Osynliga Lankar) प्रकाशित हुआ। इसकी भी वहुत प्रशंसा हुई। इस प्रकार साहित्य क्षेत्र में पर्याप्त प्रोत्साहन मिलने पर इनका उत्साह बहुत वढ़ गया और अपनी निदिष्ट साहित्यिक दिशा में स्वतन्त्रतापूर्वक अग्रसर होने लगीं।

उन्हीं दिनों स्वीडिश एकेडेमी की निगाह इन पर पड़ी। उसे इनमें अभूतपूर्व प्रतिभा दिखाई दी। फल यह हुआ कि साहित्य-सेवा में अबाधगति से अग्रसर होने के लिए एकेडेमी ने इन्हें एक छात्रवृत्ति दे दी। इस प्रकार सहसा आर्थिक चिन्ताओं से अवकाश पाकर सेल्मा और भी अधिक समय साहित्य-सेवा मे लगाने लगीं। अपने ज्ञान को विस्तार और प्रौढ़ता देने के विचार से छात्रवृत्ति के धन का सदुपयोग इन्होंने देशाटन मे किया। ये जहाँ भी कहीं गईं वहाँ के संबंध में अपने संस्मरण भी लिखती गईं जिन्हें पीछे से सुन्दर उपन्यासों का रूप दे दिया गया। Antikrists Mirackler में सिसली की सामाजिक दशा का आँखों देखा रोचकपूर्ण चित्र दिया गया है। इसी प्रकार इनकी दूसरी पुस्तक में, जो अध्यापकों के अनुग्रह से बच्चों के लिए लिखी गई

है, और जिसका Wonderful Advenchers of Nils नाम से अँगरेज़ी में अनुवाद हुआ है; में स्वीडन के प्राकृतिक दृश्यों और रहन-सहन का चित्रोपम वर्णन देखने को मिलता है। इनके दो उपन्यासों,

सेल्मा लेजरलाफ

'जेरुसलेम' (Jerusalem) और 'द इम्पायर आफ पोर्चुगालिया' (The Emperor of Portugallia) में उन दोनो देशों का औपन्यासिक उल्लेख हुआ है, जिन्हें पढ़ने पर उन देशों का सामाजिक

चित्र आँखों के सामने आ जाती है। साहित्यिकों के मत से सेल्मा के 'जेरुसलेन' के टक्कर का भावपूर्ण और यथार्थता-पूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यास इस क्षेत्र में दूसरा नही है।

सेल्मा ने देखा, जो देश ईसा के धर्मावलम्बी नहीं हैं उनमें ईसाइयों के प्रति एक विशेप प्रकार की घृणा की भावना है। उधर ईसाई भी उन देशों के निवासियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। मानव-समाज की इस पारस्परिक घृणा को, जिसका आधार धर्म या धार्मिक विश्वास कहा जाता है, सेल्मा का विनम्र धार्मिक हृदय कैसे सहन कर सकता था! अपनी प्रख्यात पुस्तक 'मिरेकल ऑफ एण्टी-क्रायस्ट, (Miracles of Antichrist) मे सेल्मा ने मतभेद की उस गहरी खाई को पाटने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार की कवीरदास ने हिन्दुओं और मुसलमानों के वीच के मतभेद को मिटाने का प्रयत्न किया था। इनके एक दूसरे उपन्यास 'दि आउट कास्ट' (The Out Cast) मे इन्होंने दिखाया है कि संसार गम्भीर हृदय वालों को समझने मे प्राय धोखा खा जाता है और उनके साथ अन्याय करने पर तुल जाता है।

सेल्मा की साहित्यिक कृतियाँ जनता को इतनी पसन्द आईं कि स्वीडिश एकेडेमी ने इन्हें स्वर्णपदक प्रदान किया और अपसाला विश्वविद्यालय ने एल एल० डी० की उपाधि-द्वारा इन्हें सम्मानित किया।

सन् १९०९ मे नोवेल पुरस्कार प्रदान करने के पश्चात् स्वीडिश एकेडेमी ने इन्हें अपना सदस्य भी वना लिया था। इनकी निम्न पुस्तकें वहुत प्रसिद्ध हैं—

Costa Brlings Saga. Invisible Links. Miracles of Antichrist. The Out Cast The Emperor of Portugallia. Jerusalem. The Wonderful Adventures of Nils.

पाल जान लुडविग हेसे

जन्म : सन् १८३० मृत्यु : सन् १९१४

सन् १९१० का पुरस्कार प्रसिद्ध जर्मन कहानी-लेखक पाल हेसे को दिया गया था। पाल हेसे का जन्म १५ मार्च सन् १८३० को बर्लिन
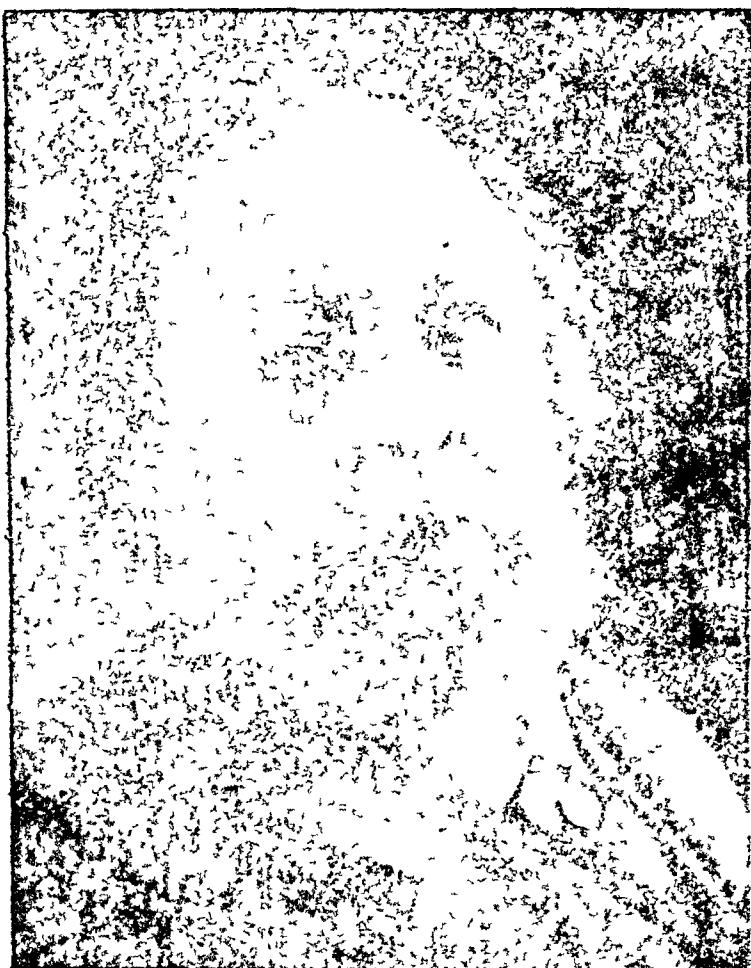
पाल जान लुडविग हेसे

(Paul Johann Ludwig Heyse) में हुआ था। बर्लिन और ब्यान विश्वविद्यालयों में इन्होंने शिक्षा पाई थी। इनके पिता कार्ल हेसे

बर्लिन विश्वविद्यालय में भाषा-विज्ञान के अध्यापक थे। उनके घर पर विद्वानों और कलाविदो का जमघट रहा करता था। इस साहित्यिक वातावरण का प्रभाव हेसे पर भी पड़ा। बान विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते समय इनका ध्यान स्पेन देश के लेखकों की ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने स्पेनी भाषा की प्राय. सभी प्रधान रचनाओं का अध्ययन कर डाला। इसके बाद इन्होंने इटली का भ्रमण किया। रोमन कवि इन्हे विशेष रूप से पसन्द आए और इन्हें विश्वास हो गया कि 'रोमन सभ्यता ही सौन्दर्य की जननी है'। रोमन कवियो की रचनाओं के मनन से इन्हें एक विशेष प्रकार की अंतर्दृष्टि प्राप्त हो गई, जो सौन्दर्य की तात्विक परख में कभी चूकती न थी। सौन्दर्य की अभिज्ञता का परिचय हेसे की कृतियों में सर्वत्र मिलता है और उसके विश्लेषण के ये विशेषज्ञ माने जाते हैं।

कहानी-कला के ये मास्टर कहे जाते हैं। इनकी शैली व्यंग्यात्मक और अत्यन्त आकर्षक है। कहानियाँ लिखते समय ये मूर्तिकार और चित्रकार की सम्मिलित प्रतिभा का प्रदर्शन करते हैं। नारी-हृदय का सूक्ष्म विश्लेषण हेसे के समान किसी कहानी-लेखक ने नही किया। प्रेमियों की सज-धज, वेष-भूषा और उनके अग-परिचालनों का विश्लेषण ये बड़ी सूक्ष्मता और तत्परता से करते है। नायक अथवा नायिका का कौन अंग किस अवस्था में रहने पर समयानूकूल अधिक आकर्षक प्रतीत होगा, इसका ध्यान एक कुशल चित्रकार की भाँति अपनी प्रत्येक कहानी मे ये रखते हैं। इस प्रसंग में एक प्रख्यात आलोचक ने इनके सबंध मे कहा है—

"His fancy works like that of a painter or sculptor, always intent on beautiful forms of movements, the pose of graceful head, a charming peculiarity of posture or gait, and that his art consists in fixing such plastic

visions by means of language rythmically attuned to the nature of subject," *

सन् १८८५ में इन्होने अपना प्रथम कहानी-संग्रह प्रकाशित किया। इसके बाद इनकी पुस्तको का सिलसिला जारी रहा। अपनी ८४ वर्ष की आयु में इन्होंने ६० से ऊपर नाटक लिखे, कई उपन्यास, काव्य और महाकाव्य। इनकी कविताएँ पढ़ने में अच्छी अवश्य लगती हैं, पर वे एक महाकवि की-सी रचनाएँ नही लगती। इटली के कई प्रख्यात लेखकों की कृतियों के इन्होने अनुवाद भी किए हैं और शेक्सपियर के कुछ नाटको के भी अनुवाद किए है। इनके जन्मकाल में इनकी अपनी कृतियों के अन्य भाषाओ मे अनुवाद नही के बराबर ही हुए। हाँ, इनकी मृत्यु के उपरान्त इनकी रचनाओं की ओर विद्वानो का ध्यान आकर्षित हुआ और इनकी रचनाओ में से कुछ का अन्य भाषाओं में अनुवाद भी हो गया।

आदर्शवाद और प्रकृतिवाद में हेसे का विश्वास समानरूप से देखा जाता है। इनकी एक प्रसिद्ध रचना की कुछ पंक्तियों का अंग्रेज़ी अनुवाद इस प्रकार है—

"I never yet of virtue or of failing
Have been ashamed, nor proudly did adorn
Myself of one, nor thought my sins of veiling.
Him I call noble, who with moderation.

---

*उनकी भावनाशक्ति एक चित्रकार अथवा मूर्तिकार की भाँति अंग-परिचालन के आकर्षक ढंग, सिर की मनोहर स्थिति, अंगन्यास की चित्त-लुभने वाली विशेपता, पदन्यास की सुन्दरता आदि के लिए सदैव उत्सुक रहती है। ऐसे लुभावने दृश्यो को वस्तु अनुरूपिणी ताल-स्वरयुक्त वाणी में अवतरित कर देना ही उनकी कला की प्रधान विशेषता है।

Carves his own honour, and but little heeds
His neighbours' slander or their approbation.*

इनकी निम्न पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं—

Hans Lange. L' Arrabiata. Mary of Magdala. Tales from the German of Paul Heyse.

---

*मैं आज तक कभी अपने गुणों या अपनी असफलताओं के लिए लज्जित नहीं हुआ, न मैंने अभिमान-पूर्वक कभी अपनी विशेषताओं को प्रख्यात किया, न अपने दोषों को छिपाने का विचार किया। मैं श्रेष्ठ व्यक्ति उसे समझता हूँ जो मिताचार के द्वारा अपनी प्रतिष्ठा का निर्माण स्वयं करता है और अपने पड़ोसियों की मिथ्या निन्दा या अनुमोदन की पर्वाह नहीं करता।

मारिस मेटरलिंक

जन्म : सन् १८६२

जन्म से बेल्जियन होने पर भी मेटरलिंक (Maurice Maeterlinck) ने पेरिस को अपना साहित्यिक क्षेत्र बनाया और फ्रेञ्च को अपने भाव-प्रकाशन का माध्यम। इसलिए इन्हें फ्रेञ्च अधिक समझा जाता है, बेल्जियन कम। इनका जन्म बेल्जियम के गेण्ट नामक स्थान में हुआ था। और वहीं के विश्वविद्यालय में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। इनके पिता इन्हें वकील बनाना चाहते थे। फलत इन्होंने वकालत पढ़ी और दो वर्ष तक की भी, पर उस व्यवसाय में इनका मन न लगा

और ये पेरिस चले आए। यहाँ आकर इन्होने साहित्यिको से मेलजोल और सम्पर्क बढ़ाना आरंभ कर दिया। पेरिस उन दिनो साहित्यिक आन्दोलनों का प्रमुख केन्द्र था। इस कारण इन्हें भारती के मन्दिर में प्रवेश करने में सुविधा हुई और ये फ्रेञ्च भाषा में लिखने लगे।
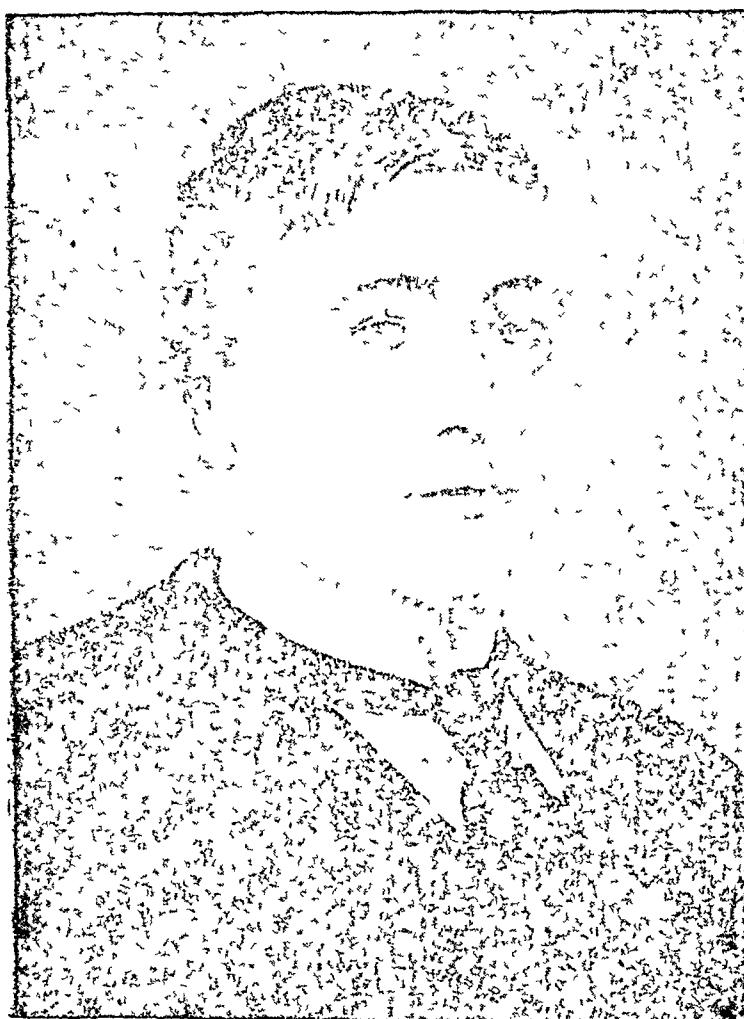
मारिस मेटरलिंक

सन् १८८६ में इनका प्रथम काव्य-संग्रह Serres Chandes नाम से प्रकाशित हुआ और उसके बाद एक नाटक La Princesse

Maleine नाम से। इनमें से पहली पुस्तक के संबंध मे विद्वान् साहित्यिकों की यह सम्मति है कि वह मिथ्या कल्पनाओं का छन्दोरूप में संकलन मात्र है, जिनके न कुछ अर्थ हैं न जिनमें कुछ भाव हैं। पर दूसरी रचना की प्रशंसा हुई है। समालोचकों के मतानुसार उसमें यौवन का आवेश पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुआ है।

सन् १८९० मे उन्होंने दो नाटक और प्रकाशित किए। प्रथम का नाम L' Intruse था और द्वितीय का Les Aveugles। इसके वाद सन् १८९२ मे उनका एक और नाटक Pelleas et Melisande प्रकाशित हुआ जो जनता व साहित्यिकों-द्वारा समान से आदृत हुआ। इसके वाद इन्होने तीन छोटे-छोटे नाटक और लिखे जिनमें से La Mort de Tintagiles को ये स्वयं सर्वोत्कृष्ट समझते हैं। इसके पश्चात् इन्होंने अपना लिखने का विषय बदल दिया और Le Tresor de Humbles नामक एक दर्शन-विषयक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक का योरप के विद्वानों मे आज तक यथेष्ट आदर है।

इस पुस्तक मे एक स्थान पर इन्होंने एक अद्भुत् भविष्यवाणी की है जो ऑलिवर लाज-सरीखे विद्वानों की समझ में भी आ रही है। ये लिखते है—

"A time may come perhaps—and many things herald its approach .a time will come, perhaps, when our souls will know each other without the intermediary of the senses."*

सन् १८९६ मे पिता की मृत्यु हो जाने पर मेटरलिक वेल्जियम लौट गए और सात आठ वर्ष तक वहीं बने रहे। फिर वे पेरिस चले

---

*शायद एक समय आयगा—जिसके आगमन की सूचना अनेक वस्तुओं से मिल रही है—एक समय शायद ऐसा आयगा—जब हमारी आत्माएँ एक दूसरे को ज्ञानेन्द्रियों की मध्यस्थता बिना ही समझने लगेंगी।

से बड़ा अद्भुत विवेचन किया गया है। इसके विषय में ये स्वयं लिखते हैं—"यह पुस्तक पाठक को मधुमक्खियों का पालना सिखाने के उद्देश्य से नहीं लिखी गई है। प्रत्युत इसमें उसे मधुमक्खियों के विचित्र जीवन और उनकी गति विधि की पूरी झाँकी मिलेगी।" कहते हैं कि इस पुस्तक को लिखने के लिए मेटरलिंक को लगातार कई वर्ष मधु-मक्खियों के एकान्त सम्पर्क में व्यतीत करने पड़े थे।

मेटरलिक की अधिकतर रचनाएँ दुखान्त हैं। इन्हें समाप्त करने के पश्चात् पाठक का मन बहुत काल तक उद्विग्न रहता है। शायद इनके नाटकों का यही गुण देखकर एक प्रख्यात आलोचक ने लिखा है कि मेटरलिक मरघट के कवि हैं जिन्हें रोने-रुलाने के सिवाय और कुछ आता ही नहीं।

नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने निबंध भी लिखे हैं जो इनकी गम्भीर और विवेचनात्मक शैली के उत्कृष्ट नमूने हैं। 'दि बरीड टेम्पल' (The Burricd Temple) इनके इसी प्रकार के पाँच निबंधों का संग्रह है। ये निबंध युद्ध से पहले लिखे गए थे। 'लाइफ़ ऑफ़ फ़्लावर्स' (Life of flowers) भी इसी प्रकार का एक निबंध-संग्रह है। 'ग्रेट सीक्रेट' (Great Secret) और 'दि मेजिक ऑफ दि स्टार्स' (The Magic of the Stais) मेटरलिंक की सबसे इधर की रचनाएँ हैं। पहली के विषय में इन्होंने स्वयं लिखा है कि 'ग्रेट सीक्रेट' में केवल एक रहस्य है। वह यह कि इसमें जो कुछ भी है, रहस्यपूर्ण है। दूसरी पुस्तक में खगोल विद्या के तत्त्वों पर आधुनिक साहित्यिक के दृष्टिकोण से विचार किया गया है। इस पुस्तक में एक स्थान पर इन्होंने स्वीकार किया है कि ईश्वर के संबंध में मनुष्य आज तक उतना ही जान पाया है जितना वह ऋग्वेद के काल में जानता था। उससे अधिक कुछ नहीं जान पाया है।

सन् १९११ में इन्हें नोबेल-पुरस्कार देते समय कहा गया था—

"He has been awarded the prize in appreciation of his many sided literary activities, and especially of his

dramatic works, which are distinguished by a wealth of imagination and by a poetic fancy which under the guise of legend, shows deep penetration, mysteriously reflecting the unrealised emotions of the reader."*

इनकी अनेक पुस्तकों के अनुवाद अंग्रेज़ी में हो चुके हैं जिनमें से कुछ ये हैं—

Our Eternity. The Betrothal. Mary Magdalend. Death. The Unknown Guest The Wrack of the Storm. The Treasure of the Humble. Wisdom and Destiny. The life of the Bee. The Burried Temple The Double Garden. Life of Flowers. Aglavaine and Selysette. Monna Vonna. Joyzelle. Sister Beatrice. and Ardiance and Barbe Bleue. Pelleas and Melisande. My Dog Old Fashioned Flowers. Hours of Gladness. Poems. The Miracle of Saint Anthony. The Burgomaster of Stilemonde. Mountain Paths. The Great Secret. The Blue Bird.

---

*इनके बहुमुखी साहित्यिक कृतित्व, विशेषतया इनके नाटकों के उपलक्ष में, जो भावना की सम्पत्ति, और उस कवित्वपूर्ण कल्पना से युक्त है जो कहानी के आवरण में गहराई तक प्रभाव करती और पाठक की अननुभूत भावनाओं को रहस्यपूर्ण ढङ्ग से प्रतिबिंबित कर देती है, यह पुरस्कार इन्हे प्रदान किया जा रहा है।

जेर्र्ट हातमाँ

जन्म : सन् १८६२

सन् १९१२ का नोबेल-पुरस्कार जर्मन लेखक जेर्र्ट हातमाँ (Gerhart Hauptmann) को प्राप्त हुआ था। हातमाँ का जन्म १५ नवम्बर १८६२ को सिलीसिया में हुआ था। पिता एक सराय में इमाम थे और चाहते थे कि हातमाँ कृषि-कार्य में मन लगाएँ। पर इनकी व्यक्तिगत अभिरुचि कला की ओर थी। अपनी रुचि के अनुसार दो वर्ष तक इन्होंने ब्रेसलन के 'स्कूल ऑफ आर्टस्' में शिक्षा भी प्राप्त की और मूर्तिकला में व्युत्पन्न हो गए। इसके पश्चात् जेना विश्वविद्यालय में इन्होंने एक वर्ष अध्ययन किया, और फिर फ्रांस, इटली और स्पेन में पर्यटन किया। सन् १८८४ में ये रोम गए। इनका विचार वहाँ तक्षणकला का व्यवसाय करने का था, परन्तु वहाँ इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और इन्हें वहाँ से ड्रेसडन चला जाना पड़ा। वहाँ से ये फिर सिलीसिया लौट आए और फिर स्थायी रूप से वहीं रहने लगे।

जेर्र्ट हातमाँ साहित्यिक बनना नहीं चाहते थे। वे चाहते थे कि अभिनय करें। पर जबान कुछ तुतली थी, इस कारण अभिनय में इन्हें सफलता नहीं मिली। उधर से निराश होकर ये नाटक लिखने की ओर झुके। और जब नाटक लिखना आरंभ किया तब फिर लिखते ही चले गए। इनके नाटक सभी दृष्टियों से उच्चकोटि के हुए और ये शीघ्र ही जर्मनी के उत्कृष्ट नाटक-लेखकों में गिने जाने लगे।

सन् १८८८ में इनका प्रथम नाटक (Before Sunrise) प्रकाशित हुआ। उसका कथानक इस प्रकार है :—"एक असभ्य और अशिक्षित किसान अपनी भूमि में कोयले की खान का पता लगाकर धनवान् हो जाता है। साथ ही धनवान् होने के, उसमें धन सुलभ दुर्गुण भी आ जाते हैं। वह अपनी दूसरी शादी रचाता है। उसकी यह पत्नी व्यभिचारिणी है। उसकी पहली पत्नी शराबी थी, उससे दो

पुत्रियाँ हैं। उनमें बड़ी जिसका विवाह हो चुका है, बहुत अधिक शराबी है। दूसरी लड़की जिसका अभी विवाह नहीं हुआ, अप्रतिम सुन्दरी है। उसे स्कूल की शिक्षा प्राप्त हुई है जिससे उसकी रुचि
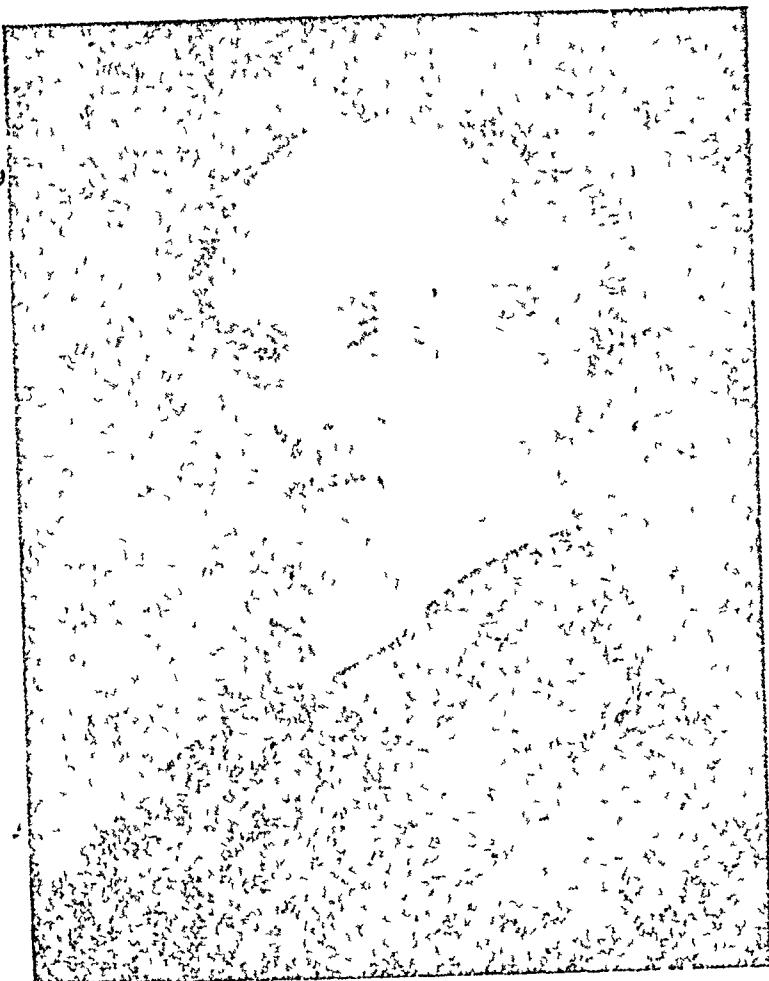
जेरट हातमाँ

परिमार्जित और परिष्कृत है। अपने आसपास के वातावरण की कुरूपता का वह अनुभव करती है। एक रिसर्च स्कालर उसके घर पर आता है। उसका उद्देश्य कोयले की खान के श्रमिकों की सामाजिक अवस्था का अध्ययन करना है। वह स्कालर छोटी लड़की पर मोहित

हो जाता है। लड़की भी उसे चाहने लगती है। यह क्रम कुछ दिन तक चलता रहता है। अन्त में एक डाक्टर द्वारा, जो उक्त किसान धनिक का गृह-चिकित्सक है, स्कालर को उस लड़की की दोनों माताओं के आचरण का पता लगता है। उसे सन्देह हो जाता है। वह सोचता है कि कहीं ऐसा न हो कि इस लड़की से मेरे जो सन्तान पैदा हो, वह भी शराबी हो जाय। मन में ऐसी आशंका आ जाने पर वह बिना कुछ कहे सुने वहाँ से चल देता है। उसके इस प्रकार चले जाने से वह लड़की बहुत दुखी हो जाती है और अन्त मे आत्महत्या कर लेती है।"

इनकी दूसरी प्रख्यात रचना (Die Weber) में जुलाहे परिवार का बड़ा आकर्षक चित्र दिया गया है। इसमें एक ओर पूँजीपतियों के कठोर हृदय का विवरण है, तो दूसरी ओर दीन जुलाहों की अकिञ्चनता का। तत्कालीन योरप के जटिल-जीवन की यह एक सुन्दर झाँकी है। बेचारे सरल जुलाहे राजा के पास सन्देश भेजकर अपने संकटों से छुटकारा पाने की आशा रखते हैं। फल उलटा होता है। उन्हें अन्ततोगत्वा उसी करघे और झोपड़े पर सन्तोष करना पड़ता है, जो उन्हें अपने बाप-दादों की भाँति विरासत के रूप में मिला है। यथार्थ-वाद की झलक उस समय की रचनाओं में इस नाटक से अधिक और कहीं नहीं मिलती, और यह देखकर कम आश्चर्य नहीं होता कि हातमाँ ने पूँजीवाद के उस विकासोन्मुख युग में श्रमिकों के प्रश्न को इस सुन्दरता के साथ उठाया है। विशेषकर उस दशा में जब कि वे स्वयं भी यथेष्ट धनशाली थे।

'दि संकिन वैल' (The Sunken Bell) इनकी अन्यतम रचना है। इसी पर इन्हें नोबेल-पुरस्कार दिया गया था।

'संकिन वैल' को हिन्दी में 'डूबी घंटी' नाम दिया जा सकता है। इसके कथानक में भी भारतीय उपनिषदों का तत्त्व प्राप्त होता है। इसका नायक हेनरिक एक कारीगर है, जो घण्टियाँ बनाने का काम

करता है। उसके काम में उसकी पत्नी मैग्डा सहायता करती है। हेन-रिक नये प्रकार की घण्टियाँ बनाना चाहता है पर उसे सफलता नहीं मिलती। यही उसकी परेशानी का कारण है। हातमाँ ने इस दम्पति को पुरुष और प्रकृति के रूप में अंकित किया है जो मिलकर नयी सृष्टि करने की फ़िक्र में हैं। एक स्त्री-पात्र और है, जिसका नाम रातनदे-लीन (Rautendelein) है। वह दोनों की मध्यवर्त्तिनी रहती है। एक दूसरी स्त्री वितकिन (Wittikin) भी है जो उसी गाँव के चर्च की पुजारिन है। वह हेनरिक की सहायता करती है। हेनरिक अपने लक्ष्य से दूर पड़ जाता है। जब असफलता के लिए लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं, तब वह नितान्त भोलेपन से उत्तर देता है—

"मैं वही हूँ, फिर भी अन्य हूँ। खिड़कियाँ खोलो, ईश्वरी प्रकाश के भीतर आने के लिए।"*

यों लिखने को हातमाँ ने बहुत-सी कविताएँ भी लिखी हैं, पर उसमें उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली। कला में हातमाँ का लक्ष्य आदर्श और सत्य का निदर्शन है। वे ऐसी कला का आदर करते हैं जिसका उद्देश्य पथप्रदर्शन और शिक्षण हो। आध्यात्मिक रहस्य भी उनकी प्रिय वस्तु है और कभी-कभी उनकी आध्यात्मिकता भारतीय उपनिषदों की आध्यात्मिकता से टक्कर खा जाती है। उपनिषत्कारों की भाँति हातमाँ ने भी अपने जीवन का उद्देश्य सत्य का अन्वेषण करना और उसे निर्भयतापूर्वक प्रकाशित करना बना लिया है। अपने इस गुण का परिचय इन्होंने अनेक उपन्यासों में दिया है। नोबेल-पुरस्कार प्राप्त करने के बाद लिखे गए इनके उपन्यास 'दि आइलैण्ड ऑफ़ दी ग्रेट मदर, (The Island of the Great Mother) में योरपीय समाज का कच्चा चिट्ठा कलापूर्ण ढंग से उपस्थित किया गया है। इसी प्रकार

---

* That man am I and yet another man
Open the windows—Light of God stream in.

इनकी एक और पुस्तक 'दि फूल इन क्राइस्ट' (The Fool in Christ) मे ईसा पर किए गए इनके व्यंग्यपूर्ण कटाक्ष देखते ही बनते हैं।

इनकी इस पुस्तक ने अंधविश्वासी ईसाई समाज मे अच्छी खलबली पैदा कर दी थी। नोबेल-पुरस्कार देते समय इनकी प्रशसा में लिखा गया था—

"He has been awarded the Noble Prize in special recognition of the distinction and the wide range of his creative work in the realm of dramatic poetry "*

हातमाँ की निम्नाकित कृतियाँ बहुत लोकप्रिय हैं—

Phantom. The Heretic of Soana. Hannele. The Sunken Bell. Atlantis

---

* नाटकीय काव्य के क्षेत्र में कृतित्व की विस्तृति और विशेषता पर विचार करके पुरस्कार प्रदान किया जा रहा है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जन्म : सन् १८६१ मृत्यु : सन् १९४१

रवीन्द्रनाथ ठाकुर भारत के उन तीन इने-गिने महान् पुरुषों में से एक थे जिन्हें समस्त ससार जानता है और जिन्होंने अपनी प्रतिभा से भारत का सम्मान उसके इन गये-बीते दिनों में भी विदेशों में स्थापित किया है। उनका जन्म सन् १८६१ ई० में कलकत्ते के प्रख्यात जोड़ासाँको भवन में हुआ था। वे प्रिन्स द्वारकानाथ ठाकुर के पौत्र और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पुत्र थे।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कलकत्ते का ठाकुर परिवार अपनी विद्या और सम्पन्नता के कारण भारत भर में प्रख्यात रहा है। इस परिवार में अनेक ऐसे पुरुषरत्न हो गये हैं जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई थी। रवीन्द्रनाथ के पितामह प्रिन्स द्वारकानाथ ठाकुर के समय में ठाकुर-वंश की प्रसिद्धि अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। उनका अतुल ऐश्वर्य और विपुल सम्मान न केवल देश मे, योरप में भी आश्चर्य के साथ देखा जाता था। उन्होंने अपने हाथ से करोड़ों रुपया अर्जन किया और खर्च तथा दान भी जी भरकर किया। सरकार में भी उनका वहुत सम्मान था और उसकी ओर से उन्हें 'जस्टिस ऑफ पीस' की उपाधि दी गई थी। देवेन्द्रनाथ ठाकुर अपनी धार्मिकता और आध्यामिकता के कारण प्रसिद्ध हो गए थे। वे वङ्गाल मे व्रह्मसमाज के प्रतिष्ठाता थे। उनकी नैतिकता और धर्मप्रियता की अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं।

रवीन्द्रनाथ ने 'मेरे वचपन के दिन' नामक पुस्तक में अपने वचपन का वडा मनोरञ्जक वृत्तान्त लिखा है। उससे ज्ञात होता है कि इनका शैशव उतना भी स्वच्छन्द न हो सका था जितना कि किसी साधारण वच्चे का होता है। महर्षि धार्मिक आन्दोलनों के कारण प्राय घर से अनुपस्थित रहा करते थे। रवीन्द्र की माता को फुस्फुस-विकार था अतएव वे भी उनकी परिचर्या की ओर विशेष ध्यान न दे पाती थीं। अतएव इनकी देख रेख का पूरा भार नौकरों पर छोड़ दिया गया था। नौकर जैसा कि उनका स्वभाव होता है, परिश्रम से वचने का अधिक से अधिक प्रयत्न किया करते। उन्हें यह पसन्द न था कि वालक रवीन्द्र महल के वाहर घूमें फिरें और वे उनके पीछे-पीछे लगे रहें, इसी लिए वे उन्हें वाहर निकलने ही न देते थे। इस प्रकार जोड़ासाँको की दीवालों से वाहर की दुनिया भी वालक रवीन्द्र के लिए आकर्षण की वस्तु थी। वे उसे देखने को सदैव लालायित रहा करते। श्यामू नाम का जो मुख्य नौकर उनकी देख-रेख को नियुक्त किया गया था, उसका बर्ताव उनके साथ और भी कठोर था। वह उन्हें महल के

किसी कमरे में बिठाकर उनके चारो ओर खड़िया से एक रेखा खींच देता और डॉटकर कह देता कि इस परिधि से बाहर निकलने में तुम्हारी खैर नही है। डर के मारे बेचारे रवीन्द्र वही बैठे रहते, जब तक वह नौकर वहाँ से हटने की आज्ञा न देता। और वह आज्ञा भी बड़ी देर में मिलती; क्योकि वह नौकर भी जैसा कि स्वाभाविक है, उन्हें घेरे में बाँधकर स्वयं कहीं गप-शप करने या बाज़ार की सैर करने चला जाता; और वहाँ से जब जी चाहता, लौटता। इसका फल यह हुआ कि रवीन्द्र की प्रवृत्ति शैशव से ही अन्तर्मुखी हो गई। वे बाहर की दुनिया के दृश्य एकान्त में बैठे-बैठे अपने मन के दर्पण में ही देखा करते।

यही नही कि उन्हे घर के बाहर निकलने की रुकावट थी, घर के भीतर भी वे मनमाना सभी स्थानों पर नही जा सकते थे। पर इतने बन्धनों के होते हुए भी उनका मन आनन्द के निर्बन्ध गगन में विहार किया करता। वे झरोखो की सासों से बाह्य प्रकृति को निर्निमेष देखा करते और उनका हृदय आनन्द से बल्लियों उछला करता।

दोपहर का सन्नाटा रवीन्द्रनाथ के लिए अनोखा आकर्षण लेकर आता। उस समय जनहीन राजपथो की ओर देख-देख ये न जाने कितनी कल्पनाएँ किया करते। मस्तक पर नील विस्तृत आकाश, उसमें प्रदीप्त सूर्य की किरणें, बीच-बीच में चील का कर्कश स्वर, रास्ते में फेरीवालों की कर्णकुहरभेदी चीख़ 'लो चूड़ी, लो खिलौना' ये सब दृश्य एकरूप होकर उनके मन को किसी अज्ञात लोक को खीच ले जाते।

साधारण से साधारण वस्तु भी उन्हे बड़ी रहस्यमयी प्रतीत होती थी। या उनकी दृष्टि ही ऐसी थी जो केवल बाह्य आवरण पर न अटककर वस्तु के अन्तराल को छूने का प्रयत्न करती थी। बरामदे के एक किनारे शरीफ़े का एक बीज बोकर वे प्रतिदिन उसे सींचा करते। जिस समय उन्हें इस बात की याद आती कि इसी बीज से वृक्ष तैयार हो सकता है तो उन्हें कितना आनन्द आता—वे कितने आश्चर्य में

पड़ते ! कई दिनो तक केवल इसी विषय पर विचार करते रह जाते कि पृथिवी के ऊपर के भाग को तो मैं देख रहा हूँ परन्तु इसके नीचे का हिस्सा न जाने कैसा होगा ! वे इस बात की न जाने कितनी कल्पना किया करते कि पृथिवी के ऊपर के मटीले रङ्ग को किस प्रकार खोदकर फेंक सकते हैं। वे सोचते कि अगर एक-एक करके तमाम बाँस धँसाते चले जायें तो कदाचित् इसकी तह का पता चल सके। बरसात के दिनों मे बादल को रोकने के लिए दरवाज़े पर थाम गाड़ने के लिए गड्ढा तक खोदा जाता। इस गड्ढे के खोदने में उन्हें बड़ा आनन्द आता। वे देखते कि गड्ढा जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है उसमे मनुष्य का सारा शरीर छिप जाता है, परन्तु उसके भीतर से होकर पातालपुरी मे नहीं पहुँचा जा सकता।

अपने महल के विषय में भी उनके विचार बड़े रहस्यमय थे। वे लिखते हैं—"अन्त पुर जो बाहर से देखने मे बन्दीगृह लगता है, मेरी नज़रों में स्वच्छन्दता का आगार था। न वहाँ स्कूल था, न पण्डित, न किसी को अपनी इच्छा के विपरीत ही कुछ करने को यहाँ बाध्य होना पड़ता था। जिसकी जैसी इच्छा होती, खेलता, गपशप करता या आराम करता। किसी को अपने काम का हिसाब देने की उसे ज़रूरत न थी। मेरे साथ मेरी एक छोटी बहन भी पढती थी, नीलकमल पण्डित की कक्षा में, पर वह चाहे अपना पाठ तैयार करे या न करे, उससे कोई कुछ कहता न था।"

घर पर रक्खे गये ट्यूटरों, नौकरों के कठोर शासन और चारों ओर के अवरुद्ध वातावरण ने बालक रवीन्द्र का हृदय क्षुब्ध कर दिया। यह इस बन्धन से मुक्ति पाने की चाह करने लगा। इन्हीं दिनों इन्हें स्कूल मे भरती करा दिया गया। इससे इन्हें कुछ सन्तोष मिला।

कल्पना के उन्मुक्त गगन मे विहार करनेवाले इस शिशु को स्कूल का पिंजड़ा अनुकूल न पड़ा और वह उससे मुक्ति पाने के लिए तरह-तरह के उपाय करने लगा। साथी लड़कों ने बताया—"जूते को पानी

में भिगोकर पहने रहो, जुकाम हो जायगा, सिर मे दर्द भी हो जायगा और सम्भव है ज्वर भी जाय। स्कूल आने से छुट्टी मिल जायगी।" यह सब किया, और यही क्यों क्वार-कार्तिक की रातों में घण्टों बाहर खुली छत की ओस मे लेटकर देखा गया; पर चाही बात न हुई। विधाता ने शरीर का निर्माण ऐसे कठोर ममाले से किया था कि छोटे-मोटे कुपथ्य उसका कुछ विगाड़ न पाते थे।

पढने में रवीन्द्रनाथ ने अधिक मन कभी नही लगाया। उनके मास्टर कहा करते थे कि यह लड़का ठाकुर-परिवार में सबसे अधिक गावदी निकलेगा और वंश की प्रतिष्ठा को ले डूबेगा।

इसके कुछ समय पश्चात् महर्षि रवीन्द्रनाथ को नाव पर अपने साथ भ्रमण के लिए ले गये। महर्षि के पुस्तक-संग्रह में एक प्रति 'गीतगोविंद' की थी। यह भद्दे ढङ्ग से बंगाक्षरो मे छपी थी और श्लोकों का भी पृथक् पृथक् निर्देश इसमें नही किया गया था। स्वर और ताल का रवीन्द्रनाथ को उस समय तक इतना बोध हो गया था कि इसके छंदों को वे विराम-चिह्नों के न रहने पर भी ठीक-ठीक पढ़ सकते थे।

फिर महर्षि उन्हें हिमालय की यात्रा पर अपने साथ ले गये। हिमालय पहुँचने के पूर्व वे उनके साथ कुछ समय शान्ति निकेतन में ठहरे। बोलपुर के पास महर्षि ने सन् १८६३ में २० बीघा ज़मीन मोल लेकर एक बगीचा लगाया था। वही उन्होने एक मकान बनवाया था और एक साधना-भवन, जिसमें बैठकर वे जगन्नियन्ता का चिंतन किया करते थे। यहाँ का प्राकृतिक दृश्य बडा मनोरम था।

यहाँ रवीन्द्रनाथ केवल घूमते ही न थे बल्कि कविता भी लिखा करते थे। एक छोटे-से नारियल के पेड के नीचे ज़मीन पर ही वे पलथी मारकर बैठ जाते और ढेर की ढेर कविता लिख जाते।

बोलपुर से चलकर साहबगञ्ज दानापुर, इलाहाबाद, कानपुर आदि स्थानों पर होते हुए रवीन्द्रनाथ महर्षि के साथ अमृतसर पहुँचे।

कुछ दिन अमृतसर में ठहरने के बाद पिता-पुत्र हिमालय को चल

पडे और मनोहर घाटियों को पार करते हुए हिमालय के उच्च शिखर पर जा पहुँचे। वहाँ एक कुटी में उनके रहने का प्रवन्ध किया गया। था। उससे कुछ नीचे एक वन था जिसमें दैत्याकार वृक्ष सिर ऊँचा उठाये वर्षों से खड़े थे। झरनों का दृश्य अलग से चित को खींचता था। सुदूर ऊँचाई पर धवल हिमराशि और उस पर विछलती हुई उषा की सुनहरी किरणें—दृश्य रवीन्द्र को आत्मविभार कर दिया करते। यहाँ से उन्होंने प्रकृति की अनन्तता का पाठ पढा और यहीं से उनके हृदय का 'सत्यं, शिव सुन्दरम्' के साथ समन्वय हुआ। साथ ही साथ महर्षि वालक रवीन्द्र के शिक्षक का भी काम करते थे। इन दिनों महर्षि उन्हें बङ्गाली साहित्य, इतिहास और ज्योतिष की भी शिक्षा दिया करते। कुछ दिनों वहाँ ठहरने के वाद पिता ने उन्हें फिर कलकत्ते भेज दिया।

हिमालय से लौट आने के वाद स्कूल की पढाई रवीन्द्रनाथ के लिए और भी कड़वी हो गई। इनके वडे भाई इन्हें स्कूल भेजने के लिए वरावर समझाते धमकाते, पर इन पर उसका कुछ असर न होता। अन्तत उन लोगों ने इन्हें इनकी स्वतन्त्र इच्छा पर छोड़ दिया।

रवीन्द्रनाथ की साहित्यिक और कला की शिक्षा के लिए उनका घर ही सवश्रेष्ठ स्थान था। स्कूल की पढाई छूट जाने पर उन्हें इस दिशा मे अपना मनोविकास करने का पूरा अवसर मिला। घर पर प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कलाविद् प्राय आते रहते थे। घर का वायुमण्डल पूर्ण साहित्यिक था। सङ्गीत तो वहाँ सवका प्रिय विषय था, चित्रकला और कविता की भी सदैव चर्चा हुआ करती थी। परिवार का प्रत्येक सदस्य किसी न किसी प्रकार की साहित्य रचना में अवश्य योग देता था। कलकत्ते मे उन दिनों मित्र-गोष्ठियों का वडा चलन था। इन गोष्ठियों को 'मजलिस' कहते थे। किसी प्रकार का गुणी आ जाय, मजलिस में उसका स्वागत होता था।

सत्रह वर्ष की अवस्था में उन्हें इगलैण्ड भेज दिया गया।

इंगलैण्ड के प्रवास का रवीन्द्रनाथ के जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इन्ही दिनो इन्होने अँगरेज़ी के प्रधान लेखको—शेक्सपियर, मिल्टन और बायरन—की कृतियाँ पढ़ी। साथ ही विदेशी लेखको—यथा गायटे, दान्ते, टेसो आदि—के अँगरेज़ी अनुवाद भी पढ़े और काव्य के सम्बन्ध में कई अलोचनात्मक लेख 'भारती' में लिखे। विक्टर ह्यूगो, शेली, ब्राउनिंग, टेनीसन आदि के अनुवादो का यह फल हुआ कि रवीन्द्रनाथ के हृदय मे भी पुराने छन्दो के स्थान पर नये प्रकार के छन्दो मे रचना करने की प्रवृत्ति हो गई। साहित्य के साथ-साथ इन्होंने योरपीय सगीत के सम्बन्ध मे भी पूरी जानकारी प्राप्त कर ली।

विलायत से लौटकर रवीन्द्रनाथ कविता और सगीत में मग्न हो गये और उनकी यह तन्यमता जीवन भर बनी रही। उन्होने दो हज़ार से अधिक गीत लिखे है। इन गीतों का बंगाल में घर-घर प्रचार है। उनके प्रसिद्ध गीत-संग्रह गीताञ्जलि पर ही उन्हे सन् १९१३ में नोबेल-पुरस्कार प्राप्त हुआ जिसके कारण उनकी ख्याति संसार भर में हो गई। फिर तो रवीन्द्रनाथ का सम्मान करने के लिए संस्थाओ में मानों होड़ लग गई। कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने उन्हें डी० लिट्० की उपाधि दी। सरकार ने भी उन्हें 'सर' की उपाधि से विभूषित किया जिसे कुछ दिनो बाद उन्होने वापस कर दिया।

इसके पश्चात् उन्होने सारे संसार के कई भ्रमण किये। योरप, अमेरिका और एशिया का ऐसा कोई प्रमुख देश शेष न रहा जिसका भ्रमण उन्होंने न किया हो। योरप के कई देशो में तो वे दो-दो, तीन-तीन बार हो आये थे। वे जहाँ गये, राजा और प्रजा ने दिल खोलकर उनका स्वागत किया। सर्वत्र उनके दर्शनार्थ विश्व-प्रसिद्ध साहित्यिकों की भीड़ लगी रहती थी। अपने भ्रमण के सिलसिले में रवीन्द्रनाथ ने कई महत्त्वपूर्ण व्याख्यान भी दिये थे जिसका सग्रह प्रकाशित हो गया है। इन व्याख्यानों से ज्ञात होता है कि वे न केवल एक महाकवि थे, एक महान् विचारक भी थे।

गीतों, व्याख्यानो और अपने जीवन-सस्मरणो के अतिरिक्त रवीन्द्र-नाथ ने दस उच्चकोटि के उपन्यास भी लिखे हैं। कहानियॉ, नाटक और प्रहसन तो उन्होंने न जाने कितने लिखे हैं। वे अपने युग के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार माने जाते हैं। ससार की ऐसी कोई सभ्यभाषा नही जिसमे रवीन्द्रनाथ के ग्रन्थों का अनुवाद न हुआ हो। फ्रेंच, जर्मन और अँगरेज़ी भाषा मे अनुवादित उनके एक एक ग्रन्थ की लाखों प्रतियाँ बिकी हैं।

रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। साहित्य और ज्ञान की ऐसी कोई शाखा नहीं बची जिस पर इस महान् विचारक ने कुछ न कुछ न लिखा हो। ९ वर्ष की आयु से लिखना आरम्भ करके अपने मृत्यु के दिन तक—६७-६८ वर्ष—वे बराबर लिखते ही रहे। उन्होने जितना लिखा है वह यदि एकत्र मुद्रित किया जाय तो ऐसी पुस्तक के पचास हज़ार पृष्ठों मे आ सके। विद्वानों का मत है कि इतने विभिन्न विषयों पर इतना अधिक और इ मा उत्तम ससार में आज तक किसी ने नहीं लिखा।

साहित्यिक के अतिरिक्त वे सच्चे देशभक्त भी थे। अपनी पुस्तक नेशनलिज़्म मे उन्होने सच्ची राष्ट्रीयता की व्याख्या करते हुए उस राष्ट्रीयता को गहित कहा है जो अन्य देश का धन हडप करना चाहती हो। बोलपुर के निकट एक सुरम्य स्थान पर उन्होने शान्तिनिकेतन नाम से एक आदर्श विद्यालय की भी स्थापना की थी। इस विद्यालय ने उन्ही के जीवन-काल मे बढते बढते एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया और विश्वभारती नाम से प्रसिद्ध हुआ। संसार के अनेक लब्धप्रतिष्ठ अध्यापक विश्वभारती में शिक्षण-कार्य करते हैं और उनके अनुभव तथा ज्ञान से भारत और विदेशो के सैकड़ों छात्र लाभ उठाते हैं। इमी के माथ सलग्न श्रीनिकेतन मे ग्राम संगठन का आदर्श कार्य होता है। यह सस्था भी शातिनिकेतन की भाँति प्रख्यात है।

कवि चित्रकार भी थे। उनके बनाये चित्रों का विदेशों में बहुत आदर हुआ है।

रवीन्द्रनाथ की क़लम ८१ वर्ष की अवस्था तक बराबर चलती रही। निम्न कविता मृत्यु से कुछ ही घंटे पूर्व उन्होंने लिखी थी:—

दु·खेर आँधार रात्रि बारे बारे
एसेछे आमार द्वारे।
एकमात्र अस्त्र तार देखे छिनु
कष्टेर विकृत भाल, त्रासेर विकट भंगी जत
अन्धकारे छलनार भूमिका ताहार।

× × ×

जतबार भयेर मुखोस तार करेछि विश्वास,
तत बार हयेछे अनर्थ पराजय।

× × ×

एइ हार-जित खेला, जीवनेर मिथ्या ए कुहक.

शिशुकाल ह'ते विजड़ित पदे पदे एइ विभीषिका,
दु.खेर परिहासे भरा।
भयेर विचित्र चलच्छवि—
मृत्यु निपुण शिल्प विकीर्ण आधारे।*

---

*दु ख की काली रात्रि बार-बार मेरे द्वार पर आई। उसके पास मुझे केवल एक अस्त्र दिखाई पड़ा—कष्ट से विकृत भाल, त्रास से की हुई विकट भंगी—उसकी छलना की भूमिका अंधकार मे थी। जब-जब मैंने उसकी भयानक मुखाकृति का निरीक्षण किया, तब-तक मेरी व्यर्थ ही पराजय हुई। यह हार-जीत का खेल, यह जीवन का मिथ्या भ्रमजाल, शिशुकाल से ही पद-पद पर विजडित दुःख परिहास से पूर्ण यह विभीषिका, भय के ये अनोखे चल-चित्र! मृत्यु के निपुण शिल्पी की अंधकार में फैली हुई कारीगरी!

रोमेरोलाँ

जन्म सन् १८६६

विदेशी लेखकों—विशेपतया फ्रेञ्च लेखकों—में रोमेरोलाँ (Rom in Rolland) भारतीयों के सबके अधिक परिचित हैं। कारण, रोलॉ महोदय उन इने-गिने योरपीय विद्वानों में हैं जिन्होंने भारत की समस्या पर उदारता और सहानुभूति के साथ विचार किया है और जिन्होने अपने ग्रन्थो मे भारत के प्रति संवेदना के भाव प्रकट किए हैं। ये महात्मा गॉधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्पर्क में भी आ चुके है। भारतीय पत्रों मे इनकी चर्चा भी बहुत कुछ हुई है।

रोलॉ का जन्म २६ जनवरी सन् १८६६ को फ्रास के एक ग्राम क्लेमसी (Clamecy) मे हुआ था। पिता वकील थे और माता सगीतज्ञा। फल यह हुआ कि रोलॉ को भी बचपन से ही संगीत से अनुराग हो गया, जो अब तक वैसा ही बना हुआ है। इनकी आरंभिक शिक्षा क्लेमसी मे ही हुई थी। इसके बाद इनके पिता ने इन्हें उच्च-शिक्षा दिलाने के विचार से अपनी वकालत छोड़ दी और पेरिस में आ बसे। जहाँ वे निर्वाह के लिए एक ऑफ़िस में क्लर्की करने लगे। इसके पश्चात् ये 'इकोल नारमाल सुपीरियार' (Ecole Noımale Superıeure) में कला और इतिहास के अध्यापक नियुक्त हुए।

विद्यार्थी जीवन से ही इनकी इच्छा किसी ऐसे महान् कलाकार की जीवनी लिख डालने की थी जिसने जीवन की कठिनाइयों से अकेले ही सघर्ष किया हो। जीन क्रिस्ताफ़ (Jean Christophe) नामक इनका प्रख्यात ग्रथ इसी सदिच्छा की प्रेरणा से प्रस्तुत हो सका था। यह भारी भरकम उपन्यास फ्रेंच में १० मोटी-मोटी जिल्दों में पूर्ण हुआ है। प्रकाशित होते ही इसने इटली, जर्मनी, फ्रास आदि में काफ़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। इसका अँगरेजी अनुवाद गिलवर्ट केनन ने किया और उसके बाद इसकी प्रसिद्धि भारतवर्ष में भी हो गई। यह ग्रंथ इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है।

नवयुवको को सम्बोधन करते हुए रोलाँ अपने इस ग्रंथ में एक स्थान पर लिखते हैं—

"You, men of to-day, march over us, trample us under your feet, and press forward Be ye greater and happier than we .. . life is a succession of deaths and resurrections. We must die to born again*"

'इकोल नार्मोल' से इन्हें एक छात्रवृत्ति मिल गई और ये इतिहास का विशेष अध्ययन करने के लिए रोम चले गए। वहाँ इनका परिचय मेसनवर्ग नामक एक विदुषी महिला से हुआ। मेसनवर्ग अपूर्व प्रतिभा-शालिनी थी और साहित्य तथा संगीत में उनकी समान रूप से गति थी। इटली के अनेक महान् साहित्यिको से उनका परिचय भी था। उनके संपर्क का रोमाँ के जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा।

इनका विवाह भी ऐसे स्थान पर हुआ, जिससे इनके साहित्यिक कार्य में अपूर्व सहायता मिली। इनके श्वसुर आचार्य ब्रील भाषा-विज्ञान के प्रकाड ज्ञाताओं के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनकी पत्नी भी साहित्य और सगीत की विशेषज्ञता थीं। ससुर के घर पर देश-विदेशों के धुरंधर विद्वान् और साहित्यिक आया-जाया करते थे। रोलाँ को उनसे साक्षात्कार करने का स्वर्ण-संयोग अनायास ही प्राप्त हो गया जिससे उस क्षेत्र में इनकी जानकारी बहुत अधिक हो गई।

साहित्य और कला के क्षेत्र में रोलाँ रूढ़ियों के विरोधी के रूप में सामने आए। फलत फ्रांस के दकियानूसी विचार के लेखकों और पाठकों ने इन्हें आश्चर्य के साथ देखा। इनके डैण्टन (Danton) ट्राइम्फ़ ऑफ़ रीजन (Triumph of Reason) 'सेण्टलुई'' और

---

*आज के मनुष्यो, तुम हमारे ऊपर से होते हुए, आगे बढ़ो। हमें अपने पैरों के नीचे कुचलते हुए आगे निकल जाओ। तुम हमारी अपेक्षा अधिक महान्, अधिक सुखी बनो। जीवन मृत्यु और पुनर्जन्म की एक शृंखला है। पुनर्जीवन के लिए हमारा मरना आवश्यक है।

'फोर्टीन्थ जुलाई' नामक नाटक नवीन शैली पर लिखे हुए हैं। ये प्रथम 'जर्नल द जिनेवा' में धारावाहिक रूप से छपे थे। फिर पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। इनकी बर्लिन मे बडी प्रशसा हुई, जिससे रोलाँ को काफ़ी प्रोत्साहन मिला। यद्यपि फ्रास इन नाटकों के कारण इनसे अप्रसन्न हो गया।

'फ़ोर्टीन्थ जुलाई' में फ्रास की राजक्रान्ति का दृश्य उपस्थित किया गया है। उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—"यदि तुम किसी तूफ़ान का चित्रण करना चाहते हो तो प्रत्येक लहर का वर्णन करो। प्रत्युत सम्पूर्ण क्रुद्ध समुद्र का वर्णन करो। छोटे-छोटे लेखे-जोखों का यथातथ्य उल्लेख उतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता जितना कि सम्पूर्ण के उग्र प्रभाव-कारी सत्य का। कला का अन्त स्वप्न में नहीं, जीवन मे है। कार्य से कार्य की उत्पत्ति होनी चाहिए।"

सन् १९१४ मे योरप में महायुद्ध आरभ हो गया। रोलाँ के हृदय पर इस भयानक दुर्घटना का बहुत अधिक प्रभाव पडा। वे उन शान्ति-प्रिय विचारकों मे हैं जो सारे संसार को भ्रातृत्व और पारस्परिक-सवेदना के पवित्र सूत्र में ग्रथित देखना चाहते हैं। वस्तुत योरप की गति-विधि से रोलाँ को कई वर्ष पहले से ही यह आशंका हो गई थी कि योरप अब समराग्नि मे कूदने जा हो रहा है। अपने प्रख्यात ग्रथ 'जान क्रिस्ताफ़' में उन्होंने इसका कुछ आभास भी दिया था और योरपीय जनता को चेतावनी दी थी कि जहाँ तक सभव हो, इस प्रलयंकरी घटना को न घटित होने देने का प्रयत्न करे। पर होनहार न टली। महायुद्ध प्रारभ होने के दिनों मे ये जेनेवा झील के किनारे के एक गाँव मे रह रहे थे। युद्ध भर ये वहीं बने रहे। हाँ, एक पत्र-द्वारा इन्होंने जर्मनी के प्रख्यात लेखक हातमाँ से यह अपील जरूर की थी कि वे जर्मनी-वासियों को युद्ध से विरत करने के लिए अपने व्यक्तिगत प्रभाव का पूरा-पूरा उपयोग करें। पर इससे होना ही क्या था! अमेरिका के तत्कालीन प्रेसीडेण्ट विल्सन को भी इन्होंने एक पत्र लिखा था जिसमे उनसे मध्यस्थ बनकर

झगड़ा निपटा देने की प्रार्थना की थी। जब कुछ वश न चला और महायुद्ध जवानी पर आ गया तब इन्होंने रेडक्रास सोसाइटी-द्वारा ही जनता की कुछ भलाई करने की सोची और उसके प्रधान मंत्रित्व का पद स्वीकार कर लिया।
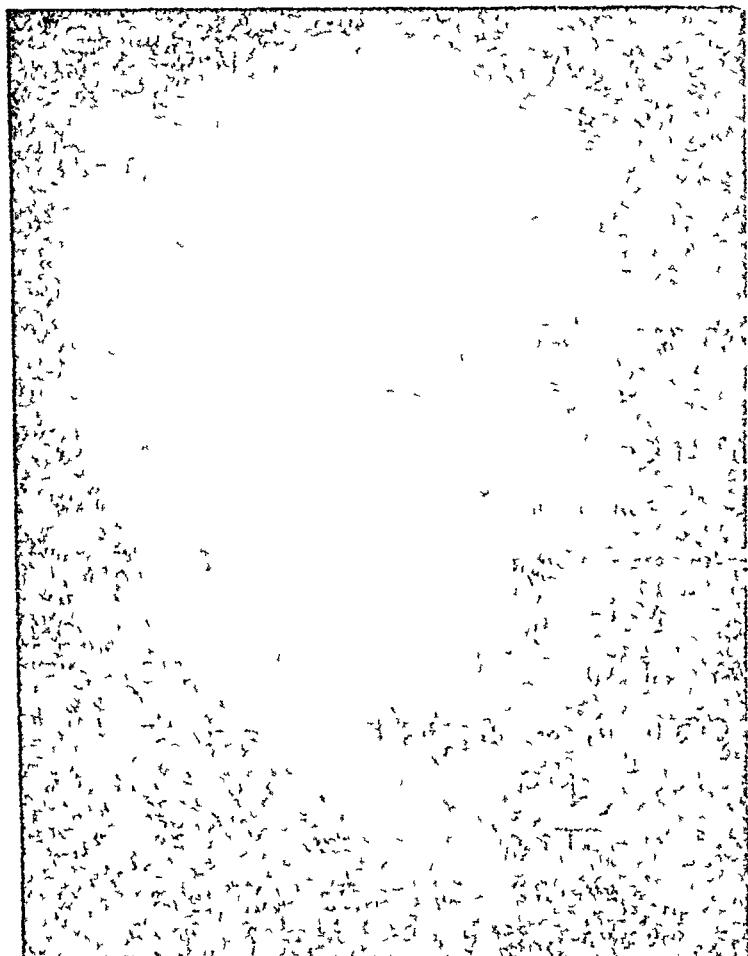
रोमेरोलाँ

लड़ाई के दिनो की व्यग्रता ने इनके हृदय को शान्ति के लिए व्याकुल कर दिया। उन्हीं दिनो इनका ध्यान महात्मा गाँधी की ओर आकृष्ट हुआ। महात्मा जी के कार्यों और जीवनी का इन्होंने गंभीर

अध्ययन किया और उन पर एक पुस्तक लिखी—(Mahatma Gandhi : The Man who Became one with the Universal Being.)।

सन् १९१५ में नोवेल-पुरस्कार-द्वारा सम्मानित होने पर रोलाँ ने उसकी सारी सम्पत्ति योरप के दुःख दूर करने के लिए दे डाली। भारतीयों पर इनकी दूसरी पुस्तक रामकृष्ण परमहंस की जीवनी (Ram Krishna The Man God and the Universal Gospel of Vivekananda) है। इस पुस्तक में इन्होंने दिखाया है कि परमहंस रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के जीवनवृत्तों और उपदेशों-द्वारा पूर्व और पश्चिम दोनों अपने उच्चतम आदर्शों की प्राप्ति कर सकते हैं।

इनके पिछले उपन्यासों में 'दी सोल इंचेण्टिड' (The Soul Enchanted) बहुत प्रख्यात है। इसका प्रकाशन सन् १९२२ में हुआ था और तब से इसकी लाखों प्रतियाँ अनेक भाषाओं में अनुवादित होकर बिक चुकी हैं। इसमें सत्यान्वेषण की भावना प्रधान है। इसमें दो लड़कियों के—जो एक पिता की दो भिन्न-भिन्न माताओं के गर्भ से उत्पन्न हुई हैं—जीवन के सुख-दुःखपूर्ण जीवन-दृश्य अंकित हैं। बड़ी लड़की का नाम एनेटी है और छोटी का सिल्वी। एनेटी सुशीला और सुशिक्षिता है, उसके विपरीत सिल्वी अशिक्षिता और कुलटा। दोनों का विवाह हो जाता है। विवाह के उपरान्त दोनों के जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्त्तन होते हैं।

इनकी पुस्तकों में निम्नलिखित अधिक प्रसिद्ध हैं—

John Christopher The Fourteenth of July Above the Battle The Four Runner, The Soul Enchanted Mahatma Gandhi

हीडन स्टाम

जन्म : सन् १८५९

सन् १९१६ को पुरस्कार प्राप्त करने वाले उपन्यासकार हीडन स्टाम (Verner Von Heidenstam) स्वेडन-निवासी हैं। इनका

हीडन स्टाम

जन्म ६ जुलाई सन् १८५९ को ओलशमर (Olshammar) में हुआ था। बचपन में ये दुबले-पतले शरीर के थे और प्रायः रुग्ण

रहा करते थे । अत घरवालों ने इस आशका से कि लड़के को कही यक्ष्मा न हो, इनको पूर्व के देशो मे भ्रमण करने के लिए भेज दिया। प्राय आठ वर्ष तक ये पूर्व के देशों मे, जिनमे मिश्र, तुर्की, यूनान आदि के नाम उल्लेखनीय है, स्वच्छदता-पूर्वक भ्रमण करते रहे । इससे इनका स्वास्थ्य भी सुधर गया और इन्हें पूर्वीय देशों की संस्कृति को समीप से अध्ययन करने का सुयोग भी प्राप्त हुआ ।

भ्रमण से लौटकर ये प्रसिद्ध चित्रकार जेरोम के शिष्य बने और पेरिस मे रहकर कुछ दिनों तक चित्रकला का ज्ञान प्राप्त किया । इनकी हार्दिक इच्छा चित्रकार बनने की थी । सन् १८८७ मे पिता का देहान्त हो जाने पर ये फिर स्वदेश आ गए ।

जिन दिनों ये स्विटजरलैण्ड में भ्रमण कर रहे थे, इनका प्रेम एक स्विस लड़की मे हो गया । इस प्रेम ने इनकी सुप्त काव्य-चेतना को जाग्रत् कर दिया । इन्होंने कई सुंदर-सुंदर कविताएँ लिखी जो पीछे से 'यात्रा और भ्रमण के वर्ष' (Valifart och Vandungsaar) नामक सग्रह में प्रकाशित हुईं । इनकी कुछ कविताओं से ज्ञात हो जाता है कि प्रवास के इन दिनों मे स्वदेश के लिए ये कितने उत्कंठित हो उठे थे । एक स्थान पर ये लिखते हैं—

I have longed for home these eight long years,
I know
I long in sleep as well as through the day,
I long for home
I seek wherever I go, not men-folk but the fields
Where would stray
The stones where as a child I used to play *

---

*इन लम्बे आठ वर्षों में मैं घर के लिए उत्सुक रहा हूँ । मुझे ज्ञात है । स्वप्न मे और दिन मे भी घर के लिए उत्सुक रहता हूँ । मैं जहाँ भी कहीं जाता हूँ, वहाँ मनुष्यो को तलाश नहीं करता । मैं उन खेतों को खोजता हूँ जिनके बिखरे पत्थरों के साथ मैं बचपन में खेला था ।

इसके पश्चात् इनका प्रसिद्ध बृहद् उपन्यास 'एण्डीमियन' (Endymion) प्रकाशित हुआ। यह पूर्व के देशों के ढङ्ग की एक प्रेम-कहानी है। इसके बाद सन् १८९२ में इनकी प्रसिद्ध कृति 'हान्स एलाइनस' (Hans Alienus) प्रकाशित हुई। इसमें सौंदर्यान्वेषी एक मनचले युवक की यात्रा का कौतूहलजनक उल्लेख है। कल्पना और सत्य का अद्भुत सम्मिश्रण इसमें देखते ही बनता है। यह विषय इनके मन का था अतः इनकी प्रतिभा इसमें खुल खेली है और इसकी चित्रोपम कुशलता पाठक को मुग्ध कर देती है।

सन् १८९७-९८ में इनका बृहद् गद्यग्रन्थ 'करोलाइनर्न' (Karolinern) प्रकाशित हुआ जिसे वीरगाथा कह सकते हैं। इसमें बादशाह चार्ल्स द्वितीय के समय की घटनाएँ कथानक के रूप में दी गई हैं और उसके विचारों पर राष्ट्रीयता का रंग चढ़ रहा है।

पहली और दूसरी पत्नी की मृत्यु हो जाने पर सन् १९०० में इन्होंने अपना तीसरा विवाह किया और उसी वर्ष अपने गाँव में एक नया मकान अपने रहने के लिए बनवाया। तब से बराबर वहीं रहते और साहित्य की सेवा करते हैं।

सन् १९१५ में लिखित अपनी पुस्तक 'न्या डिक्टर' (Nya-Dikter) द्वारा इन्होंने जनता का ध्यान अपनी ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया और ये स्वेडन के कवियों में सर्वश्रेष्ठ समझे जाने लगे। इनकी इस पुस्तक की कविताओं पर आदर्शवाद की गहरी छाप है।

इनका एक अन्यतम ग्रन्थ 'दी ट्री ऑफ़ दी फ़ुकंगस्' (The Tree of the Folkungs) इतिहास, कथा और कर्त्तव्य का समीकरण है। इसके नायक विभूतिकाल में मन्दिरों को उजाड़ते हैं और विपत्तिकाल में उजड़े मंदिरों को फिर से बसाकर उपासना करते हैं। इसके बाद वे विरोधी राजकुल-द्वारा परास्त हो जाते हैं। देशवासी, यहाँ तक कि स्वयं उसके पुत्र-पौत्र, उससे घृणा करने लगते हैं। फिर विजेता वंश के दो भाइयों में परस्पर युद्ध होता है। इन ओजपूर्ण कथानकों से इन्होंने

स्वदेश में प्राण डाल दिये हैं। इनकी अनेक रचनाएँ स्वेडन मे राष्ट्रीय गीतों के रूप में घर घर प्रचलित हैं।

इनके निम्न ग्रन्थ अधिक प्रसिद्ध हैं—

Selected Poems. Selected Stories. Charles Men *Heliga Brigigittas Pilgrims Fard*

कार्ल जेलेरप

जन्म : सन् १८५७ मृत्यु : सन् १९१९

सन् १९१७ में नोबेल-पुरस्कार का धन दो विद्वानों में बराबर बाँट दिया गया। दोनों ही विद्वान् डेनमार्क के थे। इनमें पहले कार्ल-जेलेरप (Karl Gjellerup) का जन्म २ जुलाई, १८५७ को रोहल्ट (Roholte) में हुआ था। पिता पादरी थे, पर जेलेरप को उस पेशे से घृणा थी। धर्मशास्त्रों को देखना भी यह पसन्द न करते थे। सन् १८८२ में प्रकाशित अपने एक उपन्यास, ट्यूटंस का चेला (The Disciple of Teut ns) में ईसाई धर्मशास्त्रों की इन्होंने बुरी तरह खबर भी ली है।

डार्विन स्पेन्सर और ब्रैण्डीज़ इनके प्रिय लेखक थे और उनकी पुस्तकें ये खोज-खोजकर पढा करते थे। ब्रैण्डीज़ का प्रभाव इन पर सब से अधिक परिलक्षित होता है। ये ब्रैंडीज़ वही हैं जिनकी 'उन्नसवीं शताब्दी की प्रमुख धाराएँ' (The Main Currents in Neenteenth Century) पुस्तक बहुत प्रख्यात है। जेलेरप की 'माडर्निस्ट डाक्ट्रिन्स' आदि पुस्तकें इसी प्रभाव में लिखी गई हैं।

स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर जेलेरप ने अपना घर छोड़ दिया और बहुत दिनों तक विदेशों में भ्रमण करते रहे। फिर कुछ दिन तक ड्रेसडन में रहे। वहाँ रहते हुए इन्होंने अनेक नाटक और उपन्यास
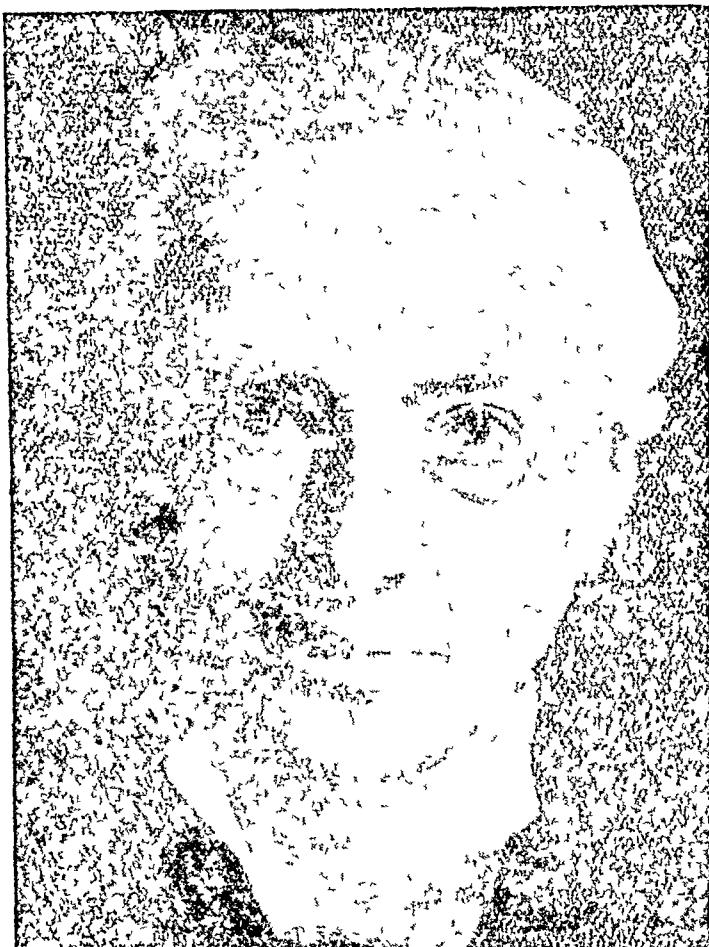
कार्ल जेलेरप

लिखे जिनमें मानव-चरित्र का बहुमुखी विश्लेषण प्राप्त होता है। संगीत और कला पर भी इनकी कई पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। इनके दो प्रसिद्ध उपन्यास 'मिन्ना' और 'मोलिन' (Minna & Mollen) में आचार-शास्त्र के शाश्वत-सिद्धान्त पर प्रकाश डाला गया है।

अपने पिछले जीवन में इनकी प्रवृत्ति प्राचीन साहित्य की ओर बहुत अधिक हो गई थी, जिसके फलस्वरूप इन्होंने ५ पुस्तकें लिखीं। पहली पुस्तक 'दाइ ऑफ़रफ़युअर' (Die Opferfeuer) सन् १६०३ में प्रकाशित हुई थी, दूसरी—'दे वेल द वोलेन्दतन' (Dey weil der Vollendeten) सन् १६०७ में, तीसरी—दी वेल्तवान्दरर (Die Weltwanderer) सन् १६१० में, चौथी—'देर गोल्डिन्स ज्वीग' (Der Goldens Zweig) १६१७ में और पाँचवीं 'राम्यूलस' (Romulus) १६२४ में।

जेलेरप ने अपने कथानक विभिन्न पार्श्वभूमियों से लिए हैं। मिन्ना का कथानक डेनसडन से सबंधित है, Die Weltwanderer का भारतवर्ष से। इसी प्रकार इनके 'दा पिलगर कामानोता' (Der Pilger Kamanota) का कथानक भी बौद्ध-साहित्य से संबंधित है। उसका नायक कामानीत अवन्ती के एक धनिक सौदागर का पुत्र है। जो कौशाम्बी के महाराज उदयन के यहाँ किसी राजकीय कार्यवश भेजा जाता है। वहाँ जाकर वह एक कुमारी के प्रेम में फँस जाता है। इस प्रकार 'पिलग्रिमेज' का प्रारम्भ होता है।

जर्मन-समाज और जर्मन-साहित्य से जेलेरप को विशेष प्रेम था। उस देश के दर्शन और जीवन-रहस्यों को अन्य देश के विद्वानों के लिए सुगम्य बनाने की इन्होंने बहुत चेष्टा की है।

इनकी सबसे अधिक प्रसिद्ध निम्न दो पुस्तकें हैं—

The Pilgrim Kamanita. Minna

हेनरिक पान्तोपिदन

जन्म : सन् १८५७

दूसरे विद्वान्, जिन्हें १९१७ में ही पुरस्कृत किया गया, पान्तोपिदन (Henrik Pontoppidan) हैं। इनका जन्म २४ जुलाई, १८५७ को जटलेण्ड के फ्रिडेरिका नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता भी पादरी
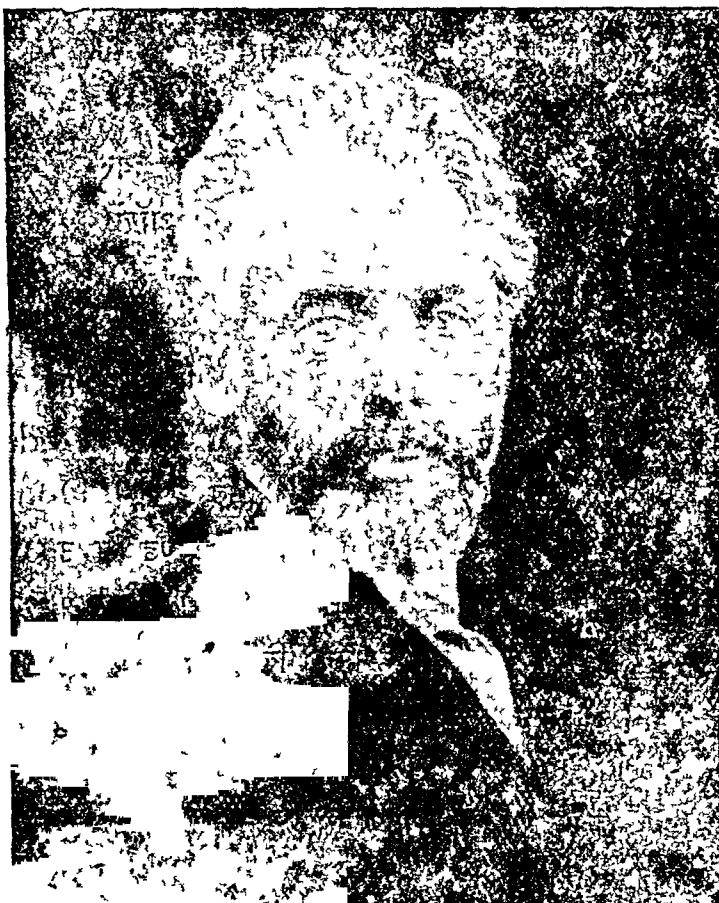
हेनरिक पान्तोपिदन

थे, पर वे इन्हें इंजीनियर बनाना चाहते थे। इसी अभिप्राय से ये कोपनहेगन विश्वविद्यालय में भर्ती हुए जहाँ इन्होंने गणित और भौतिक

विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की। इन्हें भ्रमण करना अधिक प्रिय है। अठारह वर्ष की आयु में इन्होंने पैदल ही जर्मनी और स्वीट्ज़रलैण्ड में भ्रमण किया था। स्वीट्ज़रलैण्ड मे ही प्रथम बार इनका एक लड़की से प्रेम भी हो गया था।

अपने देश के किसानों की रहन-सहन और समस्याओं का अध्ययन इन्होंने अधिक गम्भीरता-पूर्वक किया है। इनके प्रख्यात समस्त उपन्यासों का विषय प्रधानतः यही है। सन् १८६० में डेनमार्क में किसानों की अवस्था सुधारने के लिए एक कानून पास हुआ था। इस क़ानून का फल अभी पूर्णरूप से प्रकट भी न हो पाया था कि सन् १८६६ में एक दूसरा क़ानून पास हो गया जिसने किसानों की अवस्था पहली से भी बदतर कर दी। पान्तोपिदन ने वह सब अपनी आँखों देखा और उसी का चित्र अपनी रचनाओं में भी उपस्थित किया।

पान्तोपिदन के उपन्यासों की संख्या काफी अधिक है। पर इनकी प्रसिद्धि इनके प्रथम उपन्यासत्रयी से हुई जिनमें प्रथम 'सॉयल' (Muld) १८६१ में, द्वितीय 'दि प्रामिज़्डलैण्ड' (Det Forfaettedeland) सन् १८६२ में, और तृतीय 'दि किंगडम ऑफ़ दि डेड' (Dommenas Dag) १८६२ में प्रकाशित हुआ। 'प्रामिज्डलैण्ड' मे उन कठिनाइयों का सजीव चित्रण किया गया है जो किसी आदर्शानुयायी को संसार में पद-पद पर झेलनी पड़ती हैं। इसे लिखने में ३ वर्ष लगे थे। 'दि किंगडम ऑफ डेड' में डेनमार्क और कोपेनहेगन के जीवन का प्रतिबिंब है। 'दि एपाथीकरीज़ डॉटर' (The Apothecary's Daughter) इनकी एक और प्रसिद्ध पुस्तक है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त अनेक कहानियाँ भी इनकी लिखी हुई हैं। इनकी सभी रचनाएँ डेनमार्क से संबधित हैं। इतकी शैली सरल, स्पष्ट और मनोहारिणी है।

कार्ल स्पिटलर

जन्म : सन् १८४५ मृत्यु : सन् १९२४

कार्ल स्पिटलर (Carl Spitteler) स्विट्ज़रलैण्ड के निवासी थे। इनका जन्म २४ अप्रैल सन् १८४५ को बेसल के निकट लिस्टल नामक स्थान में हुआ था। पिता बेसल के डाकघर में काम करते थे। वहाँ के

कार्ल स्पिटलर

विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते हुए ये जर्मन भाषातत्वज्ञ वैकरनेजल और इटालियन विद्वान् बर्कहर्ट के सम्पर्क में आए। वहीं संगीत और

कला से भी इनका परिचय हुआ। इसके बाद इन्होंने जूरिच और फिर हीडलबर्ग के विश्वविद्यालयों में अध्ययन किया। धर्मशास्त्र और इतिहास इनका प्रिय विषय था। कहा करते थे कि मैं साहित्यिक बनना चाहता हूँ और अच्छे साहित्यकार को इन दोनों विषयों की जानकारी की सब से अधिक आवश्यकता है। कुछ पुस्तकों की रूपरेखा इन्होंने उन्हीं दिनों तैयार कर ली थी जिन्हें फिर धीरे-धीरे आगे चलकर लिखा।

शिक्षा समाप्त करके ये रूस चले गए और अध्यापक के रूप में आठ वर्ष तक वहीं रहे। इस बीच इन्होंने एक काव्य लिखा जिसमें प्रामेथियस और एपीमिथियस नाम के दो भाइयों का चरित्र है। बड़ा भाई प्रोमीथियस त्यागी है और वह त्याग में ही आत्मा का सच्चा सुख अनुभव करता है। दूसरा भाई सग्रह-प्रवृत्ति का है। इस काव्य की रोमेरोलाँ ने बहुत प्रशंसा की है।

सन् १८८३ में इनकी एक कविता पुस्तक 'एक्सट्रा मनडाना' (Extramundana) नाम से प्रकाशित हुई जिसे सृष्टि के विकास का पद्यमय इतिहास कहना ज्यादा ठीक होगा। इसके बाद १८८६ में इनकी छोटी-छोटी कविताओं का सग्रह 'तितली' (Butterflies or Schmetterlinge) नाम से प्रकाशित हुआ जिसकी अधिकांश कविताएँ प्रेम या प्रकृति विषयक हैं।

सन् १८८३ में इन्होंने अपना विवाह कर लिया था जिससे इन्हें कुछ भूसम्पत्ति प्राप्त हो गई थी। इससे इनकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति अच्छी तरह होने लगी और ये निश्चिन्त होकर साहित्य-सर्जन में लग गए। उस समय ये लूसर्न मे रहते थे। इन्हीं दिनों का प्रस्तुत इनका एक निबन्ध-सग्रह 'हँसता सत्य' Lachande Wahrheiten) नाम का है।

इनकी सब से बड़ी और महत्त्वपूर्ण पुस्तक एक महाकाव्य है जिस पर इन्हें नोबेल-पुरस्कार दिया गया था। इसका नाम 'ओलिम्पस में वसन्त (Olympischer Fruhling) है। इसे इन्होंने बड़े परिश्रम से

१-६ वर्ष में लिखा था। इसका प्रकाशन भी क्रमशः ६ वर्ष में हुआ। इसकी कथा कुछ कुछ रामायण के प्रकार की है। अलंके नाम का एक परम शक्तिशाली विश्वविजयी देवताओं को पाताल में कैद कर देता है और उन्हें निर्वासित करके सुदूर देशों में भेजना रहता है। उसकी पुत्री मोयरा अपने पिता से सर्वथा विपरीत स्वभाव वाली है। वह संसार को स्वस्थ, स्वतंत्र और प्रसन्न देखना चाहती है। उसके प्रभाव से लोक का कष्ट भूल जाता है और चारों ओर वसन्तश्री छा जाती है। परन्तु यह शान्ति स्थायी नहीं होती। युद्ध की विभीषिका उसका अन्त कर देती है।

ग्रंथ के अनेक स्थल बड़े मार्मिक हैं और प्रत्येक चरित्र रामायण की भाँति स्वयं में पूर्ण और स्पष्ट है। महारानी हिरा का चरित्र भी बड़ा आकर्षक है। वह अमेजनो की सम्राज्ञी है और अपने बुद्धिबल से सब को नाच नचाती है।

स्पिटलर ने इस प्रकार सब मिलाकर तीन महाकाव्य लिखे हैं जिनमें से दो का उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं। तीसरा महाकाव्य 'प्रोमेथस द दलदर' पहले महाकाव्य के कथानक का पुनः विकसित रूपमात्र है जिस पर स्पिटलर के मस्तिष्क की प्रौढ़ता की छाप दिखाई देती है।

इन्हीं तीनों कृतियो के सम्मानार्थ सन् १९१९ में इन्हें नोबेल-पुरस्कार प्रदान किया गया था।

इनकी प्रधान पुस्तकें निम्नलिखित हैं—

Prometheus and Epithemus. Olympischer Fruhling. Prometheus der Dulder. Laughing Truth. Selected Poems

नट हैमसन

जन्म : सन् १८५९

नट हैमसन (Knut Hamsen) नार्वे के निवासी हैं। इनका जन्म अगस्त सन् १८५९ को नार्वे की एक गहरी घाटी लाम (Lam) में हुआ। अब तक जितने व्यक्तियों को नोवेल पुरस्कार मिल चुका है, हैमसन की जीवनी उन सब से कुछ भिन्न प्रकार की है। इनके माता-पिता अत्यन्त गरीब थे। इसलिए इन्हें अपने बचपन के दिन अपने चाचा की शरण में काटने पड़े। इनके चाचा भी कुछ सम्पन्न न थे। वे एक साधारण से पादरी थे। उनके घर पर हैमसन का जीवन अत्यन्त सामान्य बालक जैसा था। न कोई संगी-साथी था, न पढ़ने लिखने का कोई प्रबन्ध। और ऐसी दशा में भी हैमसन ने अक्षराभ्यास कर लिया, यह साधारण बात नहीं थी। पड़ोस में एक कब्रिस्तान था। अवकाश के समय ये वहीं निकल जाते और उनपर लगे हुए पत्थरों के लेख पढ़ने का प्रयत्न करते। जो कोई उधर जा निकलता उससे पढ़वाकर स्वयं याद करने का प्रयत्न करते और फिर एकान्त में बैठकर उस मृतक के जीवन-वृत्त की कल्पना करते। इस प्रकार अनजाने में ही कहानियों के प्लाट इनके दिमाग में आ जाते। यही क्रम कुछ दिनों तक चलता रहा। उधर पेट की ज्वाला से संघर्ष और इधर साक्षरता के लिए स्वयं उद्योग। संसार के इस महान् साहित्यिक का बाल्यकाल सचमुच ही अनुकरणीय है। ये प्राय उन कब्रों पर भी जा बैठते जो टूटी-फूटी थीं और जिनपर घास उग आई थी। जिनपर न कोई लेख था, न परिचय! उनके जीवन-कथानक को यह मन ही मन गढ़ लेते और फिर हवा में कह कहकर सुनाते। इस प्रकार स्वयं से बातें करते देख लोग इन्हें सनकी समझते। कुछ दिन बाद जीविका का अन्य साधन न रह जाने पर हैमसन ने बोडो (Bodo) में एक मोची की दूकान पर नौकरी कर ली। इसके बाद बारह वर्ष तक ये अनियमित रूप से पेट भरने के लिए टक्करें

खाते फिरते रहे, कभी इसके घर नौकरी करते, कभी कोयला ढो-ढोकर पेट भरने के लिए कुछ पैसे प्राप्त करते। कभी किसी के खेतों पर मजूरी कर लेते। कुछ दिन के लिए इन्हें ट्राम की एक कम्पनी में भी काम मिल गया, जहाँ से एक सामान्य अपराध पर ये पृथक् कर दिए गए।
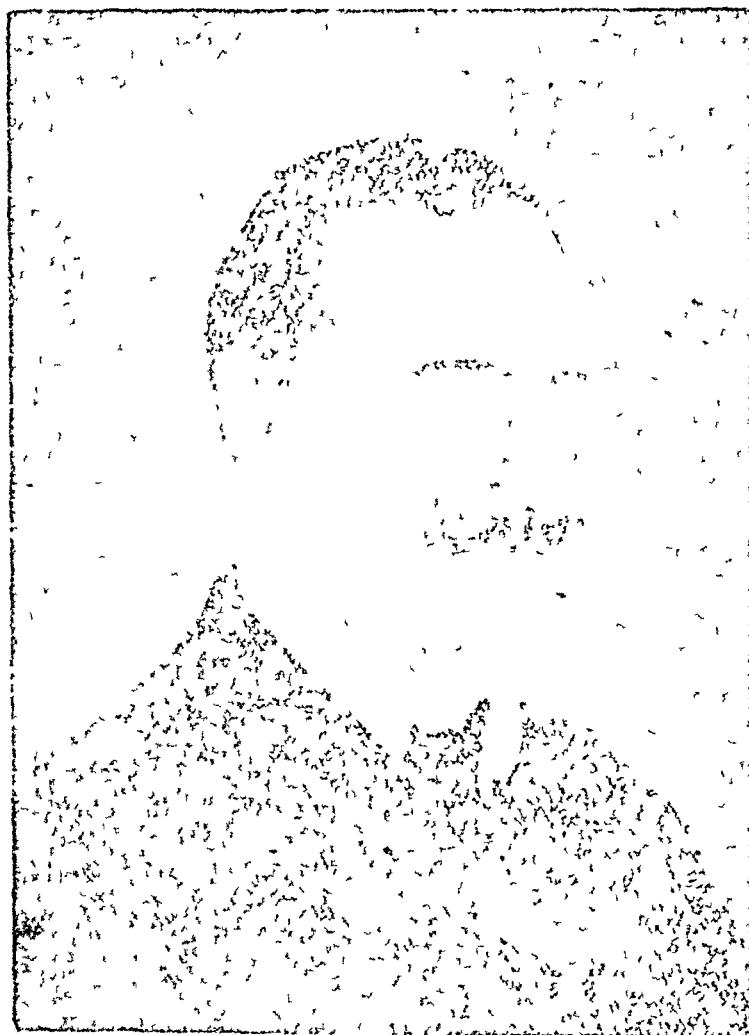
नट हैमसन

इसके बाद इनका जीवन अव्यवस्थित रूप से चलता रहा। कभी कुछ करते, कभी कुछ। उन दिनों की इनकी एक कहानी प्रसिद्ध है।

एक बार एक गोश्त बेंचने वाले से इन्होंने कुत्ते को खिलाने के बहाने से एक छोटी-सी हड्डी माँग ली और उसे कोट में छिपाकर एक एकांत निर्जन घर के चबूतरे के एक कोने जा बैठे। पेट में भूख लगी थी ही, हड्डी निकालकर चुपके-चुपके चबाना प्रारंभ किया। संयोगवश हड्डी की कोई किरच गले में जा अटकी। वेदना से बेचैन हो गए। आँखों में आँसू आ गए। अनेक प्रयत्न किये। गले में अँगुली डाली, खाँसे, खखरे पर वह टुकड़ा टस से मस न हुआ। सहसा इनके मुँह से निकला—"ऊँचे स्वर्ग पर रहने वाले भगवान्, मैं कहता हूँ कि तुम नहीं हो। और अगर तुम होते तो मैं तुम्हें शाप देता कि तुम्हारा स्वर्ग नरक की ज्वाला में पड़ जाय।"*

'बुभुक्षा' इनका अत्यंत प्रसिद्ध उपन्यास है। कहते हैं कि उसके नायक के स्थान पर इन्होंने स्वयं अपना चरित्र लिखा है। भूख का अनुभव इनसे अधिक और किस लेखक ने किया होगा। यही कारण है कि इनकी यह विश्वप्रसिद्ध रचना इतनी अधिक सजीव और आकर्षक बन पड़ी है। इसके बाद सन् १८८८ में इन्होंने 'सल्ट' (Sult) लिखी जो पुस्तकाकार छपने से पहले कुछ दिन तक डेनिश भाषा के एक पत्र में धारावाहिक रूप से छपती रही थी। बुभुक्षा (Hunger) की भाँति इसकी प्रख्याति भी बहुत अधिक है। पर इनकी प्रसिद्धि का श्रेय इनकी 'बुभुक्षा' का ही है।

बुभुक्षा के बाद इनकी दूसरी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'ग्रोथ ऑफ़ सॉयल' (Growth of Soil मूल नाम Markens Grøde) है। इसी पर सन् १९२० में इन्हें नोबेल पुरस्कार दिया गया था। अमेरिका में इस पुस्तक का बहुत नाम है। इसके पात्र यद्यपि नार्वेजियन हैं, पर अपनी

---

*"I tell you, you Sacred Baal of heaven, you do not exist, but if you did I would curse you so that your heaven should tremble with the fires of hell

कुशल विवेचन शक्ति और सूक्ष्म पर्यवेक्षण द्वारा हैमसन ने उन्हें सार्वदेशिक बना दिया है। इसका नायक आइज़क पुरुष का प्रतीक है तो नायिका इंगर प्रकृति की। दार्शनिक तत्त्व की विवेचना भी इस उपन्यास में स्पृहणीय ढंग से हुई है।

इन महान् कृतियों के अतिरिक्त इनकी 'मिस्ट्रीज़' (१८९२ में लिखित), 'पान' (१८९४ में लिखित) 'विक्टोरिया (१८९८ में लिखित), 'मनकिन वेनडिट' (१९०२ में लिखित), 'दी वाइल्ड कोरस' (१९०४ में लिखित), 'लेण्डरर्स', 'शेले साइल' (१८९३ में लिखित), 'ड्रीम्स' (१९०४ में लिखित), चिल्ड्रन ऑफ़ दी एज' (१९१३ में लिखित) व 'सेजलफास सिटी' (१९१५ में लिखित) भी प्रसिद्ध है।

इनकी निम्न पुस्तकें बहुत प्रख्यात हैं —

Hunger. Growth of the Soil. Vagabonds Mysteries. Women at the Pump

---

अनातोले फ्रान्स

जन्म : सन् १८४४ मृत्यु : सन् १९२४

रोमेरोलाँ की भाँति अनातोले फ्रांस (Anatole France) भी हमारे चिरपरिचित हैं। पर इनका परिचय दूसरे प्रकार का है। इनकी कहानियाँ पिछले कुछ दिनों से भारतवर्ष में चर्चा का विषय बनी हुई हैं। इनके देहान्त के पश्चात् इनकी कृतियों पर अमेरिका और इंगलैण्ड के पत्रों में लेख-पर-लेख प्रकाशित हुए और कई विद्वानों ने इनकी जीवनी और इनके साहित्य पर मोटी-मोटी पुस्तकें लिखीं। अंग्रेजी पुस्तकों-द्वारा इनकी चर्चा हमारे देश में भी पहुँची और यहाँ के साहित्यिक भी इस महान् लेखक व विचारक से परिचित हो गए।

इनका जन्म सन् १८४४ में पेरिस में हुआ था। इनके पिता बुक-सेलर थे, पर सर्वथा अनोखे ढङ्ग के। उन्हें पुस्तकें पढने का बड़ा शौक था जो व्यसन की सीमा तक पहुँच गया था और शायद इसी कारण इन्होंने पुस्तकों की दूकान भी खोल ली थी, जिससे नई से नई पुस्तकें मुफ्त में पढने को मिल सकें। दूकान पर ग्राहक आए हैं, पर दूकानदार महाशय या तो पुस्तक पढ़ने में तल्लीन हैं और ग्राहक से बात करने का उनके पास अवकाश नहीं है, या फिर उनके साथ सामयिक प्रकाशनों पर टीका-टिप्पणी हो रही है। इस प्रकार इनकी दूकान दूकानमात्र न रहकर एक साहित्यिक गोष्ठी बन गई जहाँ पर अनेक विद्वान् साहित्यिक आने-जाने और उठने-बैठने लगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि विद्वानों के सत्संग और साहित्य-चर्चा का प्रभाव अनातोले के जीवन पर भी बचपन से ही पड़ा।

रवि बाबू की तरह अनातोले भी स्कूल से बहुत घबराते थे और प्राय किसी न किसी बहाने से स्कूल से अनुपस्थित रहने का प्रयत्न किया करते थे।

अनातोले अपने परिवार में अकेले पुत्र थे फलत इन पर इनकी माता का प्रेम अत्यधिक था। वे इनमें प्रतिभा की झलक देखती थीं और कहा करती थीं कि अनातोले बड़ा अच्छा लेखक बनेगा। उनकी भविष्यवाणी पूरी हुई। उन्होंने इन्हें स्कूल भेजने के लिए ज़बर्दस्ती कभी नहीं की। जब ये स्कूल न जाते, तब वे इन्हें सुंदर-सुंदर कहानियाँ सुनाया करतीं।

पास ही सीन नदी थी। धूप बढ जाने पर ये उसके किनारे जा बैठते और प्राकृतिक दृश्यों को देखते-देखते इस प्रकार आत्म-विभोर हो जाते कि घर लौटने की याद भी न रहती।

अनातोले के संबंध में उनके मास्टरों और पिता की एक राय थी। मास्टर कहा करते थे कि यह लड़का किसी काम का न होगा। पिता कहा करते थे कि अनातोले कुछ न कर सकेगा और लेखक तो शायद

यह कभी नहीं बन सकता। फिर वह लायन इसके लिए ठीक भी नहीं है। आजकल लेखक बनने में सफलता की आशा बहुत कम है, असफलता की बहुत अधिक। पर ज्यों ही पिता पीठ फेरते, माता अनातोले को गोद में उठा लेती और प्यार से माथा चूमकर कान में धीरे से कहती—"बेटा, तुम लेखक बनो, ईश्वर ने तुम्हें दिमाग़ दिया है। शीघ्र ही तुम अपने विरोधियों का मुँह बंद कर दोगे।"*

माता के इस प्रोत्साहन ने अनातोले को प्रेरणा दी और वे शीघ्र ही लिखने का अभ्यास करने लगे। २४ वर्ष की अवस्था में इनका पहला लेख प्रकाशित हुआ। उसके बाद इन्हें फ़ौज में भर्ती होने की सनक सवार हुई। फ़ौज के काम करते हुए भी इनका पढ़ना और अवकाश के समय बंशी बजाना चलता रहा।

कुछ ही समय बाद ये फ़ौज से निकल आए। फिर इन्होंने सम्पादन कार्य उठाया। उससे भी जी ऊब गया तब लेखक बन गए। लिखने को ही इन्होंने एक प्रकार से अपनी आजीविका का साधन और जीवन का ध्येय बना लिया। अप्रैल, सन् १८६८ में इनकी पहली पुस्तक अल्फ्रेड (Alfred de Vigny) की जीवनी प्रकाशित हुई। उसके बाद १८७३ में इनकी कविताओं का एक संग्रह (Poems Dores) प्रकाशित हुआ। पर समालोचकों की सम्मति इनके प्रतिकूल थी।

इसके तीन वर्ष बाद इनका एक उपन्यास 'कोरिन्थ की दुलहिन' (Les noces Corinthiennes) प्रकाशित हुआ। इससे जनता को इनकी योग्यता का आभास कुछ-कुछ मिला। इसके बाद इनकी क़लम बराबर चलती रही—और इन्होंने कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं, जिनमें उपन्यास अधिक थे।

सन् १८८१ में इनकी प्रसिद्ध रचना 'सिलवेस्त्र' (The Crime of

---

*"Be a writer, my son, you have brains and you will make the envious hold their tongues"

Sy'vestre) प्रकाशित हुई। इसकी लोगों ने बहुत प्रशंसा की। इस पुस्तक ने इन्हें प्रख्यात कर दिया। पर स्वयं अनातोले अपनी इस रचना को अधिक महत्त्व न देते थे। वे अपने आलोचकों की प्रशसा पर हंसते और कहते कि उस पुस्तक में कोई विशेषता नहीं है। मैंने तो उसे यों ही चलते फिरते एक पुरस्कार के लिए लिख डाला था।

इसके बाद सन् १८८५ में इनका एक और उपन्यास 'माई फ्रेण्डस् बुक' (My Friends Book) निकली। इसे पाठकों ने पहले उपन्यास से भी अधिक पसन्द किया। उसके बाद सन् १८६५ तक ये बराबर प्रतिवर्ष दो-एक नये उपन्यास जनता के सामने रखते रहे।

सन् १८६० में प्रकाशित 'ताया' (Thais) नामक उपन्यास इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। अपनी इस अमर रचना द्वारा अनातोले फ्रान्स ने रोमन सभ्यता के वैभव को शाश्वता प्रदान कर दी है। इसकी नायिका ताया यूनान की एक सुदरी गणिका है। उसके पास अपार वैभव है। वह अपनी युवावस्था में ही इस सुख-विलास से ऊब जाती है। उसी समय एक साधू, जो कभी ताया का निराश प्रेमी रहा था और अब नील नदी के तट पर मरुभूमि में बसी तपस्वी लोगों की एक बस्ती में रहता और साधु जीवन व्यतीत करता है, उसके पास आता है और ताया को पवित्र जीवन व्यतीत करने का उपदेश देता है। उसका उपदेश मानकर ताया पवित्र जीवन व्यतीत करने के लिए साधु के साथ निकलकर चल देती है। दोनों उसी तपस्या भूमि में पहुँचते हैं। ताया वासनाओं पर विजय प्राप्त कर लेती है, पर साधु की अतृप्त वासनाएँ उभार पाती हैं और वह उनका फिर शिकार बन जाता है। उनको रोकने में अपने को असमर्थ पाकर वह प्रेम-भिक्षा के लिए ताया के पास पहुँचता है—पर उस समय जब ताया शान्ति के साथ मृत्यु-शय्या पर पड़ी अंतिम श्वासें ले रही है।

इस पुस्तक के संबंध में अनातोले ने स्वयं लिखा है कि अन्य

पुस्तकें तो मैंने जनता के पढ़ने के लिए लिखी हैं पर ताया मैंने 'स्वान्तः सुखाय' लिखी है।

इसके पश्चात् सन् १८६१ में 'लाइफ़ ऑफ लेटर्स,' उसके बाद १८६२ में 'मोती की माँ' (Mother of Pearl), १८६३ में 'ऐट दी
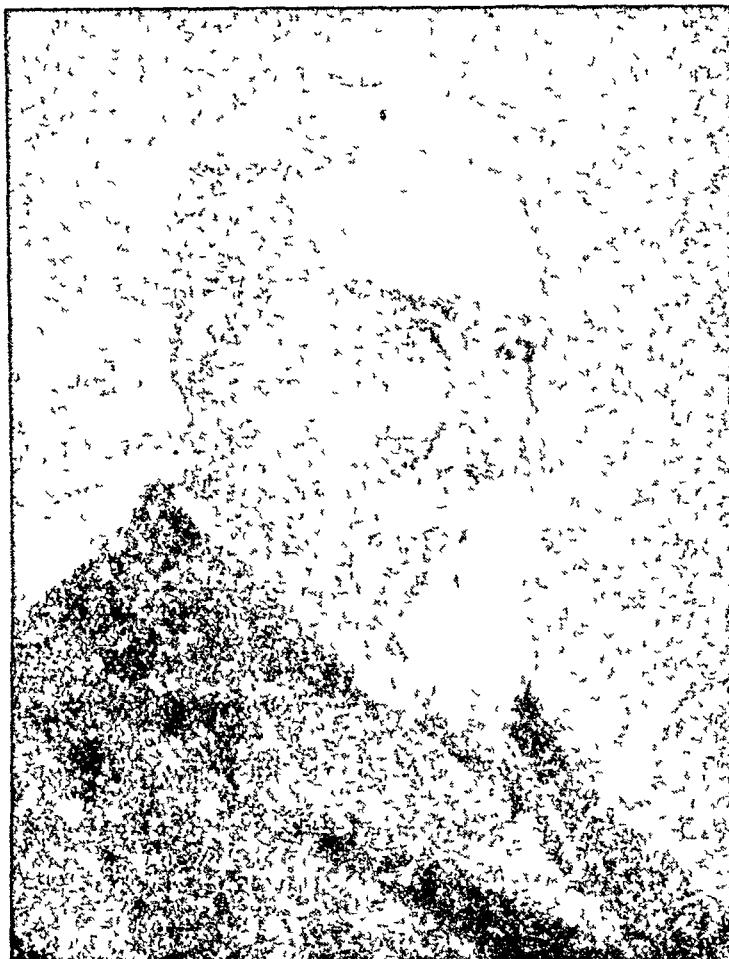
अनातोले फ्रान्स

साइन ऑफ़ रेन पेडक', १८६४ में 'लाल लिली' (Red Lily) और १८६५ में 'सेण्ट क्लेयर का कूप' (The Well of St Clare) नामक पुस्तकें लिखीं।

बड़े औपन्यासिकों के लिए देश-भ्रमण करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि इसके बिना उनके चित्रणों में यथार्थता और वर्णनों में सूक्ष्मता नहीं आ सकती। अनातोले ने भी ख़ूब देश-भ्रमण किया। सन् १६०६ में ये व्याख्यान देने के लिए अर्जण्टाइना गए पर दुर्भाग्य से न्यूनस आइरिश के बड़े पादरी ने इनके विरुद्ध विचार प्रकट किया। फल यह हुआ कि एक भी महिला इनके व्याख्यानों में सम्मिलित नहीं हुई। बात यह थी कि अनातोले की कृतियों के विरुद्ध उन दिनों फ्रांस के पत्रों में प्रचार हो रहा था और इनके लेखों को धर्म-विरुद्ध और अश्लील कहा जा रहा था।

ऐसी ही एक घटना सन् १६२२ में हुई जब पोप ने इनकी पुस्तकों का कैथोलिक चर्च में पढ़ा जाना निषिद्ध कर दिया।

इनके जीवन के दो वर्ष विशेष महत्त्व के रहे थे। एक तो सन् १६२०, जब कि एक प्रख्यात विदुषी और सुंदरी एमा (Mademoiselle Emma Laprvotee) के साथ इनका विवाह हुआ और दूसरा सन् १६२१, जब इन्हें नोबेल पुरस्कार दिया गया।

पुरस्कार लेने के लिए जब ये स्टाकहाम गए तब लोगों ने वार्साय की संधि पर इनके विचार जानने चाहे। इन्होंने स्पष्ट कह दिया कि यह संधि नहीं है, यह तो लड़ाई को बढ़ाने का रास्ता है। योरप का पतन अवश्यंभावी है। इनके ऐसे विचारों से फ्रांस के नवयुवकों में काफ़ी उत्तेजना फैल गई और वे इन्हें संदेह की दृष्टि से देखने लगे।

अनातोले फ्रांस की कहानियाँ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। उनमें से दो कहानियाँ (Balthasar और Crainqubille) सर्वोत्तम मानी जाती हैं। इसी प्रकार उनके उपन्यासों में 'ताया' और 'दी क्राइम ऑफ सिल्वेस्टर बोनार्ड' (The Crime of Sylvestre Bonnard) सर्वोत्तम हैं।

मानव-प्रकृति के ये विशेषज्ञ थे। इनकी सभी पुस्तकों में मानव-स्वभाव का सूक्ष्मतम विश्लेषण हुआ है जो सार्वभौम है। मानव-चित्त

की ऐसी कोई अवस्था शायद ही हो जिसका यथार्थ चित्र इनकी रचनाओं में उपस्थित न किया गया हो। इनकी भाषा सुंदर और शैली प्राजल है।

इनकी मुख्य कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

My Friend's Book. The Well of st. Clare. Pierre Noziere Mother of Pearl. Balthasar. Crainquebille. Thais. The Red Lili. The Bride of Corinth. At the sign of the Reine. Pedauoue. The Aspirations of Jean Servien. The Garden of Epicurus. The Revolt of the Angels Jocasta and the Famished Cat. The Elm Tree on the Mall. The Crime of Sylvestre Bonnard. Penguin Island. The Gods are Athirst The Seven Wives of Bluebeard On Life and Letters. The Life of Joane of Arc

---

जेसिन्तो बेनावन्त

जन्म : सन् १८६६

सन् १६२२ का नोबेल-पुरस्कार प्राप्त करने वाले नाटककार जेसिन्तो बेनावन्त (Jacinto Benavente) स्पेन के निवासी हैं। इनका जन्म मैड्रिड में हुआ था। पिता डाक्टर थे और वे चाहते थे कि जेसिन्तो बैरिस्टर बने। पर जेसिन्तो ने दूसरे ही प्रकार की प्रकृति पाई थी। नाटक देखने का चस्का इन्हें बचपन से ही लग गया था और नाटकों मे विदूषकों का कार्य देखकर इन्हें बड़ा आनन्द आता था। मन की ऐसी दशा में अध्ययन का कार्य आगे न चल सका और स्कूली पढाई से इन्होंने जीवन भर के लिए छुट्टी ले ली।

जब स्कूल की हाज़िरी का बन्धन न रहा तब ये खुले आम दिल खोलकर अभिनय देखने लगे। इनकी इच्छा थी कि स्वयं भी अभिनय करें, पर कोई इन्हें उस दिशा में प्रोत्साहन देने वाला नहीं था। फलतः उस ओर से निराश-से हो गए।

कुछ समय पश्चात् इन्होंने अपनी छोटी-छोटी कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित किया। पर उसकी ओर किसी ने ध्यान न दिया। तब इन्होने एक नाटक (El Teatro Fantastico) लिखा, उसे भी किसी ने पसन्द नहीं किया। फिर भी ये निराश नही हुए।

इसके बाद इन्हें एक सरकस मे काम मिल गया और उसके साथ-साथ ये रूस जा पहुँचे। वह कम्पनी कई वर्ष तक रूस में जहाँ-तहाँ खेल दिखाती रही। जेसिन्तो को उस कम्पनी के साथ रहते हुए रंग मंच सबंधी अच्छा ज्ञान हो गया और उनका अनुभव भी विशाल हो गया।

लेखक बनने की अभिलाषा उनके हृदय में अभी तक पूर्ववत् थी। सरकस का साथ छोड़ देने के बाद इन्होंने एक फड़कती हुई पुस्तक 'स्त्रियों से पत्र' (Cartas de Mujeres) लिखी। इसके बाद कई नाटक इनके लगातार प्रकाशित हुए।

सन् १९०१ में प्रकाशित एक प्रहसन (Sacreficis) और सन् १९०२ में प्रकाशित दूसरे प्रहसन (Alma Triumfante) से इन्हें प्रहसन-लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त हुई। इससे इन्हें बहुत प्रोत्साहन मिला। फिर इन्होंने १९०३ में 'शुक्रवार की रात्रि' (Noche del Sabado), १९०६ मे 'प्रेम का बल' (Mas Fuerte que el Amor), १९०७ में 'मृतक की आँखें' (Los ojos de Los Muertos) और १९०९ में 'राजकुमारियों की पाठशाला' (La Escuela de las Princesas) नामक नाटक लिखे।

स्पेन और अमेरिका के युद्ध के पश्चात् स्पेन में नवयुवकों का एक ऐसा दल बन गया था जो अपने को प्रगतिशील कहता था और पुराने विचार रखने वालों को दकियानूसी कहकर गाली देता था। ये लोग

चाहते थे कि संस्कृति में से ही नहीं, साहित्य में से भी रूढ़िवाद औ
प्राचीनता के मोह को मिटा दिया जाय, जिससे देश में नव-विधान ला
में रुकावट न हो। जेसिन्तो को इस दल ने अपना नेता बना लिया
इस प्रकार स्पेन के नवयुवक समाज में इनकी प्रतिष्ठा हो गई।

जेसिन्तो बेनावन्त

सन् १९०६ में लिखित 'निर्मित अनुराग' (Created Int-
rest) को इनकी रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसी अनुक्र
में इन्होंने एक और पुस्तक 'प्रसन्न नगरी' (La Ciudad Aleg
Y Confiada) सन् १९१६ में लिखी थी।

सन् १६१३ का वर्ष वेनावन्त के लिए विशेष महत्त्व का रहा। उस वर्ष इनकी प्रख्यात पुस्तक 'अनुराग-पुष्प' (La Malquerida) प्रकाशित हुई जिसने इन्हें ख्याति की चरम सीमा पर पहुँचा दिया। उसी वर्ष इन्हें स्पेनिश-एकेडेमी की सम्मानपूर्ण सदस्यता का पद भी प्राप्त हुआ।

वेनावन्त के लिखे नाटकों की सख्या १५० से ऊपर है। इनमें से कई के फिल्म भी वन चुके हैं। अमेरिका मे इनके नाटकों के फ़िल्म वहुत लोकप्रिय हैं। इगलैंड और रूस मे भी वे प्राय: दिखलाए गए हैं। अमेरिका की प्रख्यात अभिनेत्री नैंसी ओनील ने इनके कई नाटकों की भूमिका मे कार्य किया जिसके कारण इनके नाटकों के फ़िल्मों में सदैव दर्शकों की भारी भीड़ वनी रही। कई वार वेनावन्त ने स्वयं विदेशों मे जाकर अपने नाटको के फ़िल्म अपनी आखो से भी देखे।

'राजकुमारियों की पाठशाला' नामक नाटक सव से अधिक दार्शनिक है। इसके आदर्श सेवा और त्याग हैं। वेनावन्त आदर्शवाद के पूर्ण समर्थक हैं जो कि नोवेल-पुरस्कार प्राप्त करने के लिए प्रधान गुण माना जाता है।

इनकी निम्न पुस्तकें प्रख्यात हैं—

The Vulgar Collection of Plays The Mistress of the House. Saturday Nght. The Rose of Autumn, Vested Interests Brute Force. The Passion Flower.

विलियम बटलर यीट्स

जन्म : सन् १८६५

कवि यीट्स (W B Yeats) आयरलैण्ड के निवासी हैं। इनका जन्म-स्थान डबलिन के निकट सैण्डेमाउण्ट (Sandaymount) है। इनके पिता वकील थे और चित्रकार भी। नाम था जे० बी० यीट्स। इनकी शिक्षा डबलिन और लन्दन मे हुई। पर ग्रीष्म की छुट्टियों में ये सदैव स्लिगो कण्ट्री (Sligo country) चले जाया करते थे। वहाँ इनके नाना की ज़मींदारी थी। आयरलैंड की झीलों और पहाड़ियो के प्राकृतिक दृश्यो से प्रेम यीट्स को वहीं उत्पन्न हुआ जो आज तक बना हुआ है। आयरलैंड के ग्रामगीतों से भी इनका परिचय उन्हीं दिनों हुआ। यीट्स की समस्त रचनाओं पर इसकी छाप विद्यमान है।

डबलिन विश्वविद्यालय में अध्ययन करने के दिनों से ही इनकी कविताएँ उक्त विश्वविद्यालय की मेगज़ीन मे छपने लगी थी। पर इनका प्रथम काव्य-संग्रह सन् १८८७ में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह का नाम था 'ओइसन का भ्रमण' (The Wandering of Oison)। इस संग्रह से यीट्स लंदन के साहित्यिक समाज-द्वारा कवि के रूप में स्वीकृत कर लिये गए। उसके बाद इन्होंने कई विद्वानों के सहयोग से लन्दन में अनेक गोष्ठियो की नीव डाली जिनका उद्देश्य आयरिश साहित्य के अँग्रेज़ी अनुवादों के अध्ययन को प्रोत्साहन देना था। ये गोष्ठियाँ एक क्लब के तत्त्वावधान में कार्य करती थीं जिसका नाम था—रेमर्स क्लब (Rhymers Club)। सन् १८८५ में एडविन जे एलिस के सहयोग से इन्होंने विलियम ब्लेक की पुस्तकों का संपादन किया और उसके दो वर्ष पश्चात् "ए बुक आफ़ आइरिश वर्स" का।

सन् १८६२ में इनका पहला नाटक 'दि काउण्टेस केथलिन' (The Countess Cathleen) प्रकाशित हुआ। इसके संबंध में वे स्वयं लिखते हैं—"जब मैने काउण्टेस केथलिन" लिखा था तब मैं

वस्तुत: उस यथार्थ चित्र पर ही विचार करता था जो मेरे सामने बन रहा था। पर उसका एक और रूप भी था, जो मेरे मस्तिष्क में बराबर चक्कर लगाया करता था। यह उस व्यक्ति की आत्मा है जो आयरलैण्ड को प्रेम करता है। अशांति में कूदकर, स्वयं को भुलाकर, स्वय को संसार की कुटिलताओं के हाथ वेंचकर और शाश्वत को नाशवान् के लिए देकर।"

सन् १८६४ में इनका एक एकाकी नाटक 'मनभावता देश' (The Lands of Hearts Desire) प्रकाशित हुआ। उसके एक वर्ष वाद उनके निवंधों का एक संग्रह (The Celtic Twilight) प्रकाशित हुआ।

सन् १८६७ में इनकी एक प्रेम-कहानी 'दि सीक्रेट रोज' (The Secret Rose) प्रकाशित हुई और दो छोटे-छोटे काव्य ग्रंथ, जिनमें एक का नाम 'दि टेवल्स ऑफ़ दि लॉ' (The Tables of the Law) और दूसरे का नाम 'दि एडोरेशन ऑफ़ दि मागी' (The Adoration of the Magi) है, प्रकाशित हुए। 'आइरिश रगमंच' की स्थापना का विचार यीट्स वहुत दिनों से कर रहे थे, इसी वर्ष लेडी ग्रेगरी और एडवर्ड मार्टिन की सहायता से उनका यह दृढ विचार हो गया। फलस्वरूप सन् १८६६ में डवलिन में 'आइरिश लिटरेरी थियेटर' की स्थापना हुई। प्रारंभ के तीन वर्षों में इस प्रेक्षागृह में केवल अँग्रेज़ी में नाटक खेले गए, और वह भी वहुत-बहुत दिनों के अंतर से। पर सन् १६०२ से इन्हें आयरिश अभिनेताओं की एक मंडली का सहयोग प्राप्त हो गया। फिर इसमें अभिनयों का क्रम लगातार चलने लगा। कुछ दिन वाद यह संस्था एक थियेट्रिकल कम्पनी वन गई। और इस प्रकार १६०४ में यीट्स को 'एवे थियेटर' (Abbey Theatre) स्थापित करने में सफलता मिली। इस थियेटर में केवल यीट्स लिखित नाटकों का अभिनय तो होता ही था, और आइरिश लेखकों के नाटक भी खेले जाते थे। उदाहरण के लिए जार्ज मूर का नाम

लिया जा सकता है। उनके अतिरिक्त इस प्रेक्षागृह ने कुछ ऐसे आइरिश नाटककारों को भी जनता के सामने ला दिया जो अन्यथा अंधकार में ही पड़े रहते और जिनका नाम कोई न जान सकता। जान सिंज (John Synge) और पेड्रैयिक कोलम (Padraic Colum) इसी
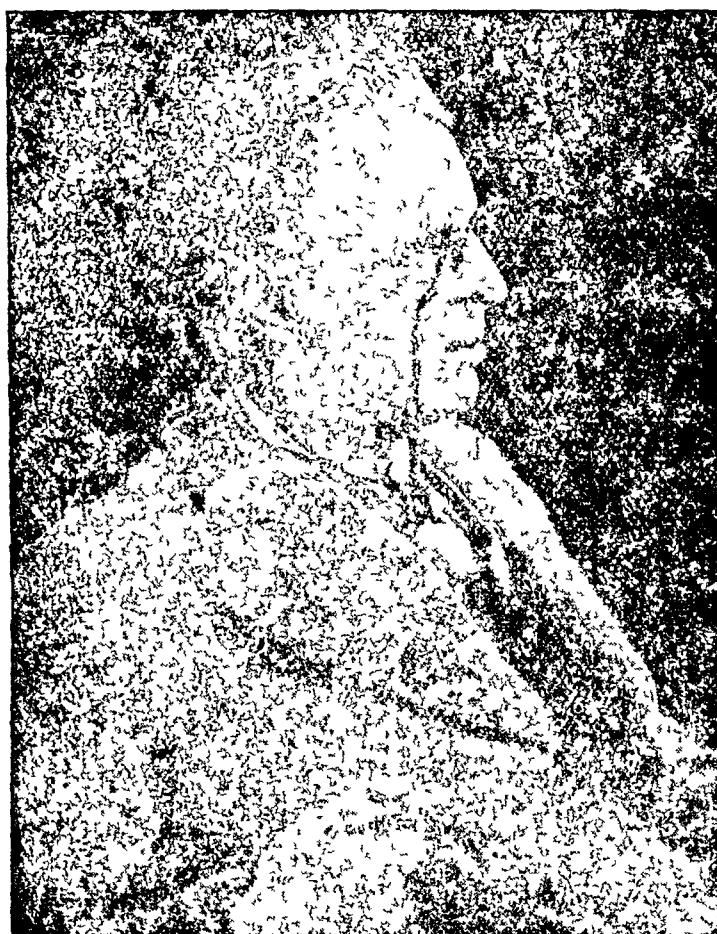
विलियम बटलर यीट्स

श्रेणी में आते हैं। अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'सदसद्विवेक' (Ideas of Good and Evil) १६०२ मे प्रकाशित और 'नाटक और विवाद' (Plays and Controversies) १६२३ में प्रकाशित में यीट्स ने अपने इसी थियेटर के संबंध में लिखा है।

यीट्स ने अपने नाटकों के कथानक आयरलैण्ड मे परंपरा से प्रचलित पुरानी कहानियों से लिये हैं। उनमे इनके तीन सब से अधिक प्रसिद्ध नाटक हैं 'केथलिन इन होलीहान' (Cathleen in Houlihan) १६०२ में लिखित, 'दि पॉट ऑफ ब्राथ' (The Pot of Broth)—उसी वर्ष में लिखित और 'दि आवर ग्लास' (The Hour Glass) १६०३ मे लिखित। इनके अतिरिक्त इनके अन्य नाटक हैं—'दि किंग्स थ्रूश होल्ड' (The Kings Thresh Hold)—१६०४ में लिखित, 'ऑन वेल्स स्ट्रेण्ड' (On Baile's Strand)—१६०४ मे लिखित, 'डिरड्रे' (Deirdre)—१६०७ में लिखित, 'दि ग्रेट हेलमट' (The Great Helmet)—१६१० मे लिखित और 'दि प्लेयर क्वीन' १६११ में लिखित।

इसके वाद इनके नाटकों पर जापानी रंगमच का प्रभाव पडने लगा। इस प्रभाव मे लिखे गए इनके दो नाटक प्रसिद्ध हैं। एक सन् १६२७ में लिखित 'प्लेज़ फॉर डान्सर्स' (Plays for Dancers) और दूसरा सन् १६२४ में लिखित 'दि कैट एण्ड दि मून' (The Cat and the Moon)। नाटकों मे इस प्रकार व्यस्त रहने पर भी कविता की ओर से यीट्स विरक्त नहीं हो गए थे। पाठकों में से अनेक को ज्ञात होगा कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर सन् १६१२ के अपने प्रसिद्ध 'गीताञ्जलि टूर' में जब इंगलैण्ड गए थे तव उनकी गीताञ्जलि के अँग्रेज़ी अनुवाद को यीट्स ने सुना था और इतना अधिक पसन्द किया था कि कई वार गोष्ठी बुलाकर लोगों को उसे पढकर स्वयं सुनाया था, और व्याख्या करके उसके भाव समझाये थे। यही नहीं, गीताञ्जलि को सम्पादित करके, उस पर स्वयं भूमिका लिखकर और फिर उसे सुन्दर रूप में छपवाकर यीट्स ने ही उसका प्रचार इंगलैण्ड में किया था। इस प्रकार रवीन्द्रनाथ को नोवेल पुरस्कार दिलाने में यीट्स ने वहुत वड़ी सहायता की थी। साथ ही ये स्वयं भी कविताएँ लिख रहे थे और इनकी प्रसिद्धि इनकी रहस्यवाद कविताओं के कारण ही अधिक है। संसार इन्हें

रहस्यवादी कवि के रूप में ही अधिक जानता है। 'दि विण्ड एमंग दि रीड्स्' (The Wind Among the Reeds)—१८९४ में प्रकाशित, 'उत्तरदायित्व' (Responsibilities)—१९१४ में प्रकाशित, 'दि वाइल्ड स्वान्स ऑफ कूल' (The Wild Swans of Coole)—१९१७ में प्रकाशित, 'पिछली रचनाएँ' (The Later Poems)—१९२२ में प्रकाशित और दि टावर' (The Tower)—१९२७ में प्रकाशित, इनके प्रख्यात कविता-संग्रह हैं।

'बचपन के दिवास्वप्न' (The Reveries over Childhood) और 'जवानी के दिन' (The Youth) और 'ट्रेम्बलिंग आफ् दि वेल' (Trembling of the Veil) नामक पुस्तकों में यीट्स ने अपनी आत्मकथा सुन्दरता के साथ लिखी है। 'दि विजन' नाम से सन् १९२२ में प्रकाशित इनकी एक दार्शनिक पुस्तक और है जो उस क्षेत्र मे आदर से देखी जाती है।

आयरलैण्ड के स्वतंत्रता युद्ध में यीट्स ने प्रशंसनीय कार्य किया है। अपनी एक कविता-पुस्तक—'दि पोइम्स इन डिस्करेजमेण्ट' (१९१३ में लिखित) इन्होंने स्वदेश को ही समपित भी की है। 'आइरिश लिटरेरी सोसाइटी' के संस्थापक भी यही हैं। सन् १९२२ में स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने पर आयरलैण्ड की सरकार से इन्हें मंत्रीपद प्रदान किया गया था।

सन् १९२३ में इनकी कविता के उपलक्ष में इन्हें नोबेल-पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया था।

वृद्ध हो जाने पर भी ये बराबर लिखते जा रहे हैं। साहित्य-संसार को इनसे अभी बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

लेडिस्ला रेमाण्ट

जन्म : सन् १८६८ मृत्यु : सन् १९२५

सन् १९२४ का पुरस्कार पाने वाले लेडिस्ला रेमाण्ट (Ladislaw St Reymont) का जन्म ६ मई १८६८ को रूसी पोलैण्ड के कोबिल बिल्की स्थान मे हुआ था। पिता 'ओरगेनिस्ट' (Organist) थे और अपने पुत्र को भी वही काम सिखलाना चाहते थे। पर रेमाण्ट की रुचि पढने-लिखने की ओर थी, यद्यपि इसके लिए घर में प्रचुर साधन न थे। फलस्वरूप घर पर ही थोड़ी-बहुत शिक्षा पाकर ये आरगन बजाने लगे और पिता को घर की खेती-बारी मे भी सहायता देने लगे। इसके कुछ दिन बाद ये एक घूमने-फिरने वाली नाटक मण्डली में शामिल हो गए और फिर एक स्टोर मे सहायक 'स्टोर कीपर'। इसके बाद एक छोटी-सी रेलवे लाइन में 'प्वाइंट्समैन' का काम करने लगे। इस प्रकार आजीविका कमाने के लिए इन्हें कई छोटे छोटे पेशो का आश्रय लेना पड़ा जो कि न महत्त्व के थे न स्थायी। प्वाइंट्समैन का काम करने के दिनों मे ही इन्होंने कहानी लिखना प्रारम्भ किया और सौभाग्य से कुछ कहानियाँ इनकी सामयिक पत्रों में छप भी गईं। पर दुर्भाग्य से इसका असर इनकी नौकरी पर बुरा पड़ा और ये नौकरी से पृथक् कर दिए गए। अतएव इन्हें घर छोड़कर इधर-उधर भटकने को फिर बाध्य होना पड़ा। इसी सिलसिले मे इन्होंने जस्टोकावा की प्रख्यात मूर्ति 'कुमारी' के दर्शन किए और अपनी इस यात्रा के अनुभव एक पुस्तक (Phielgrzymka do Jasenj Gory) में लिखे। इस पुस्तक के लिए इन्हें इतना पारिश्रमिक मिल गया कि इनके कुछ दिन चैन से कटे। इसी पुस्तक ने साहित्य क्षेत्र में इन्हें प्रसिद्ध भी कर दिया। इसके बाद ये लन्दन चले गए और कुछ दिनों तक वहीं रहे। वहाँ रहते हुए वे थियोसोफिस्ट आन्दोलन में सम्मिलित हो गए और उसी सिलसिले में कुछ समय तक लाज और पेरिस में भी रहे।

इनकी प्रारम्भिक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियों में एक कहानी-संग्रह (Kome Ijantka), दो उपन्यासों (Spokanie और Fermenty) और तीन छोटे छोटे उपन्यास (Ziemia Obiecana, Lily और Wpierwsza Noc) का नाम विशेष प्रसिद्ध

लडिस्ला रेमाण्ट
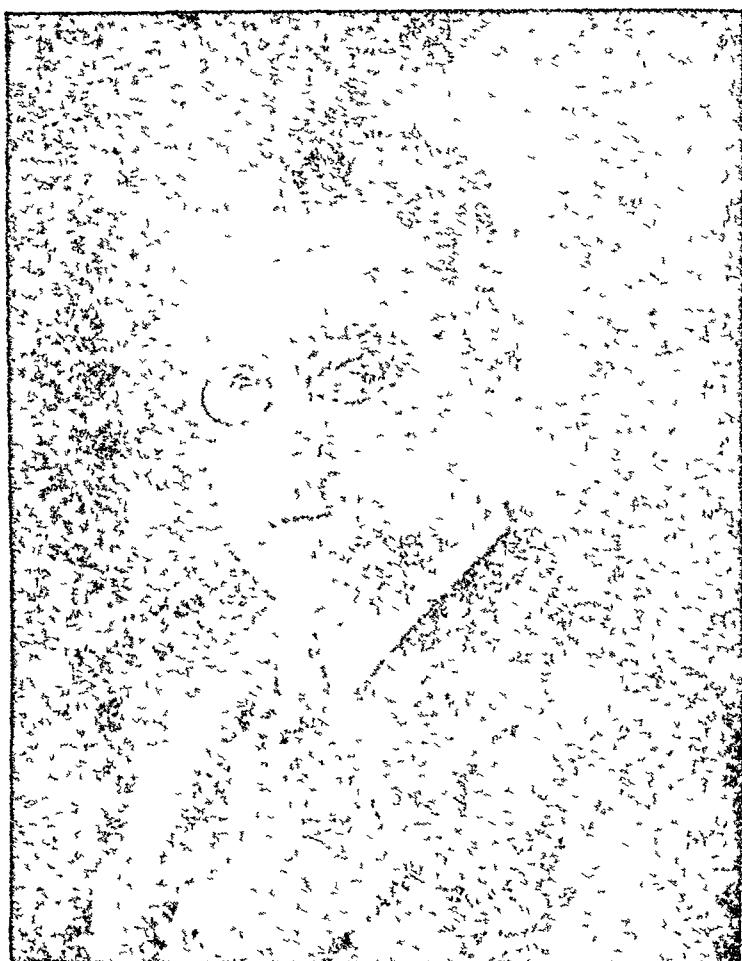
है। ये सब रचनाएँ १८९३-९९ के बीच की हैं। इनसे रेमाण्ट की प्रसिद्धि तो बहुत अधिक नहीं हुई, हाँ पैसा इन्हें अवश्य काफ़ी मिल गया जिससे जीवन प्रवाह निश्चिन्तता से चलने लगा। इसी धन से

इन्होंने इटली में भ्रमण किया और उसके बाद इंग्लैण्ड भी गए। वहाँ से पोलैण्ड लौट आने पर वार्स के निकट ये एक रेलवे दुर्घटना में पड गए जिससे इनको गहरी चोट लगी। इस दुर्घटना ने इनके स्वास्थ्य को, जो यों भी वहुत अच्छा नही था, सदा के लिए नष्ट कर दिया।

सन् १६०३-४ मे इन्होने अपने राष्ट्रीय ग्रंथ 'किसान' (The Peasants) का कुछ भाग लिखा। पर इससे उन्हें संतोष नहीं हुआ इसलिए उसे जला डाला। सन् १६१० में इन्होंने उसे दुबारा लिखा। यह वृहत्काय ग्रंथ ४ भागों में पूर्ण हुआ। इसी कृति ने रेमाण्ट को अमर कर दिया। इनकी ख्याति देश भर में फैल गई और ये योरप के चोटी के उपन्यास लेखकों में गिने जाने लगे। 'किसान' के अनेक संस्करण थोड़े ही समय में हो गए और इसी पर इन्हें 'साहित्यिक नोवेल-पुरस्कार' भी दिया गया।

'किसान' के चारों भागो का नामकरण रेमाण्ट ने चार प्रधान ऋतुओं के आधार पर किया है। एक भाग का नाम है 'शरद्' (Autumn), दूसरे का 'हेमंत' (Winter), तीसरे का 'वसंत' (Spring) और चौथे का 'ग्रीष्म' (Summer), किसानों के विवरण से पूर्ण पुस्तक के ये नाम स्वाभाविक ही प्रतीत होते हैं। क्योंकि किसानो के जीवन का प्रकृति और उसकी ऋतुओं से निकटतम सम्पर्क रहता है। इसकी कहानी भी ऋतुओं की भाँति धीरे-धीरे चलती है। वीच-वीच में ऋतु-अनुकूल घटनाओं, जैसे शरत् काल में विवाह और वाप-वेटे का झगड़ा, वसंत में वृद्ध पिता की करुणाजनक मृत्यु, जाडे में प्रेम के रोमांस की खोज और ग्रीष्म में लड़ाई-झगड़ा आदि का भी सुंदरता से समावेश किया गया है। पोलैण्ड के किसानों की अवस्था के पूर्ण उल्लेख के साथ इसमे गाँवों के मनोरम-अमनोरम सभी प्रकार के दृश्यों का चित्रण कुशलता से हुआ है। वहाँ के दरिद्र ग्रामीणों के शात और संतोषपूर्ण जीवन के कार्य-कलाप देखते ही वनते हैं। एक दरिद्र किसान की मृत्यु पर 'शरद्' में इन्होंने लिखा है—

And higher yet it flew, and higher,
Yet higher, higher,
Yea, till it set its feet,
Where man can hear no longer the voice
of lamentation, nor the mournful discords
of all things that breathe—
Where only fragrant lilies exhale
balmi odours, where fields of flowers
in bloom waft honey-sweet
scents athwart the air;
Where Starry rivers roll over beds
of a million hues, where night
comes never at all*

नोबेल-पुरस्कार प्राप्त करने के बाद भी इनकी कई सुंदर रचनाएँ प्रकाशित हुईं। इनमें एक पुस्तक प्रेतविद्या संबंधी (Vampire) है। दो ऐतिहासिक उपन्यासों—Na Krawedzi और Za Frontem में १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में घटनेवाली पोलैण्ड के इतिहास की एक दुःखपूर्ण किंतु वीरता से उद्भासित घटना का चित्रण किया गया है।

सन् १९१९-२० में रेमाण्ट अमेरिका गए। इस यात्रा का उद्देश्य वहाँ के प्रवासी पोलिशों की दशा की जानकारी प्राप्त करना था। वहाँ

---

*उसकी आत्मा उड़ी, ऊँची, ऊँची और भी ऊँची; और अन्त में वह वहाँ पर जाकर रुकी जहाँ भूलोकवासियों की क्रन्दनपूर्ण-विरोध की आवाज़ें नहीं पहुँच सकतीं। जहाँ सुगन्धपूर्ण लिली के फूल पवन में अपना मादक गंध विकीर्ण कर रहे हैं, जहाँ फूलों की क्यारियों की मधुर महक हवा में बिछलती है। जहाँ अच्छोदका नदियाँ रंगबिरंगी घाटियों में प्रवाहित हो रही हैं। जहाँ रात्रि कभी होती ही नहीं।

से लौटने पर इन्हें हृदयरोग हो गया और आत्मकथाओं का एक संग्रह, जिसे ये इन दिनों लिख रहे थे, अधूरा छोड़कर अकाल में ही ५ दिसंबर १६२५ को वारसा मे ये स्वर्गगामी हो गए। इनके उपन्यासों का संग्रह २३ मोटी जिल्दों में निकला है।

इनकी प्रख्यात पुस्तकें निम्न हैं—

The Promised Land The Peasant Before Down. From a Diary. The Storm

---

बर्नार्ड शा

जन्म सन् १८५६

जार्ज बर्नार्ड शा (George Bernard Shaw) वर्त्तमान योरप के प्रमुख लेखकों में गिने जाते हैं। इनका जन्म २६ जून, १८५६ को डबलिन में हुआ था। इनके बाप अँग्रेज़ थे और सिविल सर्विस में क्लर्क थे। माता संगीत-विशारदा थीं। इस कला में उनकी प्रसिद्धि इतनी अधिक हो गई थी उनके ट्यूशनों की आय से ही परिवार का सारा काम चल जाता था। शा का जीवन बहुत अव्यवस्थित रहा है। जीवन के प्रारम्भ में पहले ये क्लर्की करते देखे जाते हैं। कुछ समय बाद लंदन पहुँचकर अनेक प्रकार के छोटे-छोटे कार्य करके कुछ पैदा कर लेते हैं, जो उनके निर्वाह भर को कठिनाई से पर्याप्त होता है। जब उससे भी काम नहीं चलता तब ये 'एडीशन' में टेलीफोनों के एजेण्ट बनते हैं और उसके बाद एक कसर्ट में पियानो बजाने का काम करते हैं।

सन् १८८० से लेकर १८८३ तक इनका जीवन ऐसा ही अव्यवस्थित चलता रहता है। इसी बीच में ये समाजवादी आन्दोलन में भाग लेते हैं और 'इर्रेशनल नाट' (Irrational Knot), 'लाइफ़ एमंग दी आर्टिस्ट्स' (Life among the Artists), 'एन अनसोशल

बर्नार्ड शा

सोशलिस्ट' (An Unsocial Socialist) और 'केशल बाइरन्स प्रोफ़ेशन' (Cashel Byron's Profession) उपन्यास भी लिख डालते हैं जो बहुत समय तक अप्रकाशित अवस्था में ही पड़े रहते हैं।

सन् १८८४ में ये फ़ेवियन सोसाइटी (Febian Society) के सदस्य बनते हैं। यह साहित्यिक समाजवादी संस्था उस युग की एक प्रख्यात सोसाइटी थी, जिसकी चर्चा समाचार-पत्रों में बराबर रहा करती थी। मिसेज़ एनी बेसेण्ट भी उसके नेताओं में थीं और इस सोसाइटी के माध्यम से शा का परिचय उनसे भी हो गया था। इस सोसाइटी का प्रमुखपत्र था 'फेवियन एसेज'। उसका सम्पादन कार्य शा को सौंपा गया। उसी काल में इन्होंने कई राजनीतिक पेम्फलेट भी लिखे।

जिनमें से दो के नाम इस प्रकार हैं—'फ़ेबियानिज़्म एण्ड दी इम्पायर' (Fabianism and the Empire) सन् १९०० में प्रकाशित और 'फ़ेबियानिज़्म एण्ड दी फ़िस्कल क्वेश्चन' (Fabianism and the Fiscal Question) १९०४ मे प्रकाशित।

इसी बीच १८८८ से ये 'स्टार', 'वर्ल्ड' और 'सैटरडे रिव्यू' पत्रों के समालोचक भी हो गये। पहले ये सगीत पर समालोचना लिखते थे, फिर १८९५ से नाटकों पर भी लिखने लगे। इस सबंध में इनकी दो पुस्तकें प्रख्यात हैं—पहली 'क्विण्टएसेन्स ऑफ़ इब्सनिज़्म (Quintessence of Ibsenism) सन् १८९१ में प्रकाशित, जिसमें इंगलैंड के रगमंच संबंधी इब्सन की कला का प्रोपेगेण्डा है, और दूसरी—'दि परफ़ेक्ट वेनेराइट (Perfect Wagnerite) १८७८ में लिखित—में इंगलैंड के वेनर के संगीत की प्रशंसात्मक आलोचना है। इनके अतिरिक्त सन् १८९५ मे प्रकाशित इनकी एक छोटी-सी पुस्तिका और भी है जिसका नाम 'दि सेनिटी ऑफ़ आर्ट' (The Sanity of Art) है और जिसमें शा ने मेक्स नारदाँ (Max Nordan) पर उनकी कला-संबंधी अतिशयोक्तियों के आक्षेप किये हैं। वस्तुतः इसके लिखने का उद्देश्य समसामयिक कला-संबंधी अभिरुचि को प्रोत्साहन देना मात्र है।

अंग्रेज़ी नाटकों की आलोचना करते करते शा को स्वयं भी नाटक लिखने की इच्छा हुई। इस दिशा में उन्हें सफलता भी खूब मिली।

उनके प्रथम सात नाटक जो सब-के-सब मौलिक हैं और जिनमें किसी-न-किसी समस्या को लेकर चला गया है, रंगमंच की 'टेकनीक' की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि के हैं। उनके नाम निम्न हैं—

Widower's House The Philenderers. Mrs Warren's Profession. Arms and the Man. you never can tell. The Man of Destiny. Candida.

इनमें से अंतिम 'केनडिडा' सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ है। यह लिखा तो १८९४ में ही गया था, पर १९०३ तक रंगमंच पर नहीं आ सका। ये सातों नाटक एक संग्रह के रूप में 'दि प्लेज़, प्लेज़ेंट एण्ड अनप्लेज़ेंट (The Plays Pleasant and Unpleasant) नाम से सन् १८९८ में प्रकाशित हुए। दो वर्ष बाद उनके और तीन नाटकों का, जिनके नाम 'दी डेविल्स् डिसीपिल्' (The Devil's Disciple), 'सीज़र एण्ड क्लियोपाट्रा' (Caesur and Cleopatra) और 'केप्टन ब्रासबाउण्ड्स कन्वरशन' (Captain Brassbound's Conversion) हैं, एक संग्रह 'थ्री प्लेज़ फ़ॉर प्यूरिटन्स' (The Plays for Puritans) नाम से प्रकाशित हुआ।

इसके बाद शा ने प्रहसन लिखना आरम्भ किया जिनमें 'मैन एण्ड सुपरमैन' (Man and Superman), 'जानबुल्स अदर आईलैंड' (John Bull's other Island), 'मेजर बार्बरा' (Major Barbara), 'दि डाक्टर्स डायलिमा' (The Docter's Dilemma), 'गैटिङ्ग मेरिड' (Getting Married), 'दी श्यूइंग अप ब्लैन्को पॉसनेट' (The Shewing up Blanco Posnet), 'मिसलिएन्स' (Misalliance), 'एण्ड्रोकिल्स एण्ड दि लॉयन' (Androcles and the Lion), 'पिग्मेलियन' (Pygmalion) और 'ओवररूल्ड' (Overruled) अधिक प्रख्यात हो चुके हैं।

युद्ध पर शा ने तीन प्रहसन बड़े ज़ोरदार लिखे हैं जिनकी चर्चा युद्ध के पश्चात् व्यापक रूप से हुई और जिनके अनेक संस्करण थोड़े

ही दिनों मे निकल गए हैं। इनके नाम हैं—'ओ' फ्लेहर्टी वी॰ सी॰' (O' Flaherty V. C.), 'लार्ड आगस्टस डज़ हिज़ बिट' (Lord Augustus Does His Bit) और 'हार्टब्रेक हाउस' (Heartbreak House)। उनके सब से इधर के तीन नाटक 'बैक टु मेथुसाला' (Back to Mathusalah), 'सेण्ट जोन' (Saint Joan) और 'दि मिलियनाइरिस' (The Millionairess) है जो १६१८-२४ के बीच में प्रकाशित हुए हैं।

अपने प्रहसनों में शा ने समस्त प्रकार के कपटाचरण, आविष्ट भावुकता और प्रख्यात व्यक्तियों की अविचारपूर्ण चाटुकारिता पर तीखे प्रहार किए हैं। सभी क्षेत्रों के अँगरेज़ अधिकारी शा के ऐसे प्रहारों से बहुत डरते हैं। अपने इन प्रहसनों की भूमिकाएँ शा ने बहुत लम्बी-लम्बी लिखी हैं। कभी-कभी तो इनकी भूमिका की पृष्ठ-संख्या मूल पुस्तक की पृष्ठ-संख्या से छ॰ छ आठ-आठ गुनी तक हो गई है। उनका कथन है कि मेरी भूमिकाओं में भी तत्त्व है, अन्यथा मैं उन्हें इतना लम्बा क्यों बनाता। उनकी पुस्तक 'गैटिङ्ग मेरिड' की भूमिका मे यौन-सिद्धान्त पर व्यंग्यपूर्ण लम्बी विवेचना की गई है जिसे पढते हुए ज्ञात होता है कि लेखक यौन-विज्ञान और विवाह के दार्शनिक तत्त्वों पर प्रकाश डालने के बहाने उस क्षेत्र के लेखकों पर चुटीले व्यंग्य कर रहा है। इसी प्रकार 'एण्ड्रोक्लिस' की भूमिका में ईसाई धर्म की खबर ली गई है और 'दी डार्क लेडी ऑफ दि सॉनेट्स्' में शेक्सपियर पर चुटीली फ़बतियाँ कसी गई हैं।

विगत महायुद्ध के दिनों में शा ने अनेक राजनीतिक पुस्तिकाएँ भी लिखीं जिनमें से 'दि कामनसेंस एण्ड दि वार' (The Commonsence and the War), 'हाउ टु सैटिल दि आइरिश क्वेश्चन' (How to Settle the Irish Question), 'पीस कान्फ्रेन्स हिण्ट्स्' (Peace Conference Hints) प्रमुख हैं।

सन् १६२८ में इन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'इण्टेलीजेण्ट वूमन्स

गाइड टु सोशलिज्म एण्ड केपीटलिज़्म' प्रकाशित की। इसके बाद 'एडवेंचर्स ऑफ दी ब्लेक गर्ल इन हर सर्च फॉर गॉड' प्रकाशित हुई।

शा की पुस्तकों में से प्रत्येक के अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं और उनकी लाखों प्रतियाँ बिकती हैं जिनकी रायल्टी से उन्हें लाखा रुपए की आय प्रतिवर्ष होती है। ये सर्वथा निरामिष भोजी हैं और नशे की कोई वस्तु हाथ से नहीं छूते। अपने प्रकाशनों के सम्बन्ध में शा बहुत अधिक सतर्क हैं। कौन पुस्तक किस काग़ज़ पर छपेगी और उसमें कहाँ पर किस प्रकार का टाइप लगेगा, इसका निर्णय वे स्वयं करते हैं। पूरी पुस्तक में प्रूफ़ की एक भूल भी उन्हें सह्य नहीं है।

सन् १९२५ में नोवेल-पुरस्कारार्थ इनका नाम घोषित किए जाने पर इन्होंने पहले तो उसे लेने से इनकार कर दिया और कहा कि मेरे पास इतना अधिक धन है कि मैं उसी की व्यवस्था नहीं कर पाता, और लेकर क्या करूँगा। फिर एकेडेमो-द्वारा बहुत अनुनय-विनय किए जाने पर पुरस्कार तो सधन्यवाद स्वीकार कर लिया, पर उसका धन स्वेडन और इंग्लैण्ड की सांस्कृतिक आदान-प्रदान की व्यवस्था के लिए दान कर दिया।

शा संसार के प्रायः सभी प्रमुख देशों में भ्रमण कर चुके हैं। उनके भ्रमण सबंधी अनुभव विभिन्न देशों के पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित भी हुए हैं।

शा की निम्न पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—

The Quintessence of Ibsenism Pleasant and Unpleasant. Three Plays for Puritans. Heartbreack House. Back to Methusalah. Saint Joan. Intelligent Woman's Guide to Socialism. The Adventures of the Black Girls in her Search for God. Too Free to be good Village Wooing On the Rocks.

ग्रेज़िया देलदा

जन्म : सन् १८७५ मृत्यु : सन् १९३६

ग्रेज़िया देलदा (Grazia Deledda) का जन्म सार्डीनिया के एक छोटे से शहर नोरो में ९ अक्टूबर सन् १८७५ को हुआ था। थोड़ी ही अवस्था में सार्डीनिया की विविध जातियों की जानकारी इन्हें हो गई और इन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग उन जातियों के सूक्ष्म अध्ययन में किया। स्कूल-जीवन में ही ये विविध विषयों पर सुन्दर लेख लिखने लगी थीं जिसके कारण स्कूल के अध्यापकों के सिवा वाहर के साहित्यिकों का ध्यान भी इनकी ओर आकृष्ट होने लगा था। इसके बाद अपने एक अध्यापक से प्रेरणा पाकर इन्होंने इटली के पत्रों मे छपने के लिए अपनी कहानियाँ भेजना प्रारम्भ किया। इसके कुछ ही दिन बाद इन्होंने एक उपन्यास (Fior di Sardegna) लिखा जिसका प्रकाशन रोम की एक संस्था ने स्वीकार कर लिया। इस उपन्यास ने ग्रेज़िया देलदा को कुछ प्रसिद्धि अवश्य प्रदान की, पर इन्हें अच्छी तरह विख्यात इनके दूसरे उपन्यास (Elias Portolu) ने किया। इस उपन्यास का अनुवाद शीघ्र ही योरप की समस्त भाषाओं में हो गया। इतने अल्प समय में इतनी ख्याति प्राप्त कर लेने वाला उपन्यास शायद यह पहला ही था। उन दिनों देलदा स्थायी रूप से रोम में निवास करने लगी थीं।

देलदा ने कई गीत भी लिखे हैं जो बहुत सुन्दर हैं। इसी तरह कुछ नाटक भी इनके लिखे हुए हैं। नाटकों के लिखने में इन्हें केमिलो एन्टोना ट्रेवर्सी नामक एक और लेखक का सहयोग भी प्राप्त हुआ है।

परन्तु इनकी ख्याति का प्रधान कारण इनकी कहानियाँ और उपन्यास हैं। इनकी पृष्ठभूमि में सार्डीनिया है। इनके उपन्यासों में सार्डीनिया के बहुमुखी जीवन की बहुत सुन्दर व्याख्या हुई है। मानव

जीवन के साथ इनकी पूरी सहानुभूति है और मानव की अनेक शाश्वत समस्याओं को सुलझाने का इन्होंने प्रशंसनीय प्रयत्न किया है।

ग्रेज़िया देलदा

इन्हीं विशेषताओं के कारण इन्हे १९२६ का नोबेल-पुरस्कार प्रदान किया गया था।

इनके निम्नलिखित उपन्यास अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके हैं—

Racconti Sardi. Anime Oneste. La Via del Male. Cenere Nostalgia. Lombra del Passa to II Nonno. Il Nostro Padrone Nel Deserto Colombi e Sparvieri. Canne al Vento. Le Colpe Atrui Marianna Sirca. L. Incendio nell Obiveto. Sl Segrets dell Uomo Solitario. La Fuga in Eggitto. Annalena Bilsini'

हेनरी बर्गसन

जन्म : सन् १८५८

सन् १९२७ का साहित्यिक नोबेल-पुरस्कार प्राप्त करने वाले हेनरी बर्गसन (Henri Bergson) का जन्म १८ अक्टूबर १८५८ को पेरिस में हुआ था। ये नस्ल से 'एंग्लो-ज्यू' थे। सेकिण्डरी स्कूल की पढ़ाई समाप्त करने के बाद ये इस द्विविधा में पड़ गए कि आगे क्या पढ़ें, दर्शन या गणित! दोनों विषयों की ओर इनकी समान प्रवृत्ति थी, पर चुनना था केवल एक विषय। अन्त में इन्होंने दर्शनशास्त्र को चुना और उसके अध्ययन के लिए 'इकोल नारमाल सुपीरियार' नामक शिक्षण-संस्था में प्रविष्ट हुए। सन् १८८१ में वहाँ से शिक्षा समाप्त की और शिक्षक का कार्य अपनाया। १८८९ में इन्होंने डाक्टर आफ लेटर्स की डिग्री प्राप्त की। तत्पश्चात् पहले ये एंजर्स प्रेविंपेस में दर्शनशास्त्र के अध्यापक रहे और फिर पेरिस की अनेक शिक्षा संस्थाओं में शिक्षण कार्य किया। सन् १८९८ में इन्हें 'इकोल नारमाल सुपीरियार' में दर्शनशास्त्र की अध्यापकी का पद मिला और उसके दो वर्ष बाद प्रसिद्ध संस्था

(College de France) में। यहाँ पहले ये पुरातत्व की 'चेयर' पर रहे, तत्पश्चात् दर्शनशास्त्र की। सन् १६१८ में अध्यापन कार्य को सदैव के लिए छोड़ कर ये दर्शनशास्त्र का मनन करने लगे।

हेनरी बर्गसन
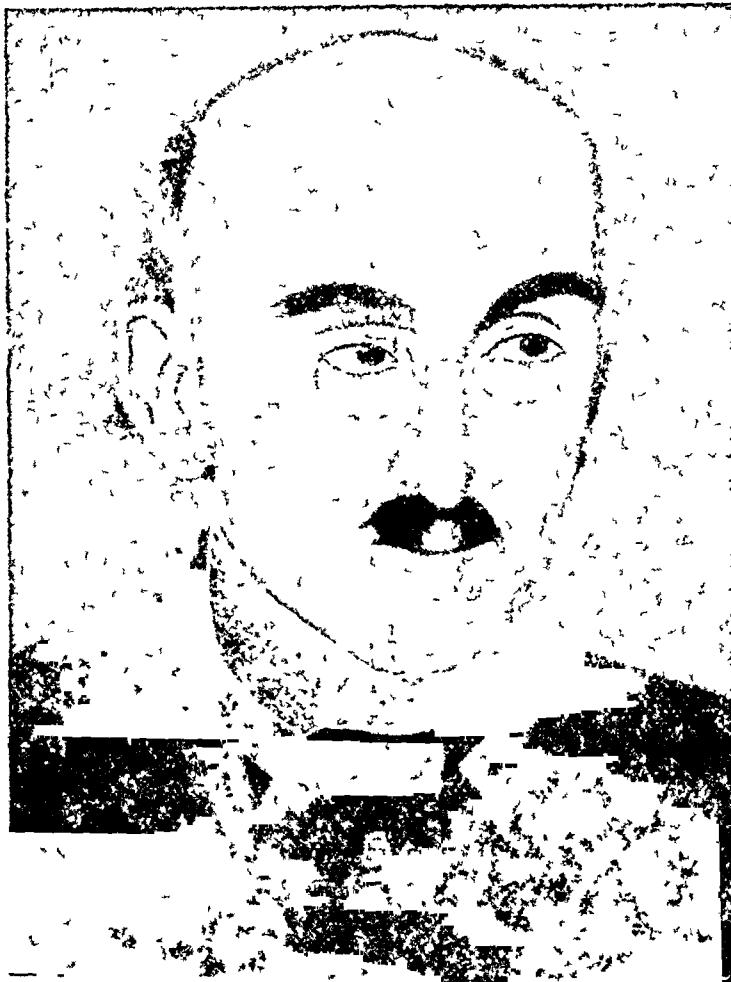
सन् १६१४ में बर्गसन फ्रेंच एकेडेमी के सदस्य निर्वाचित हुए। फिर १६२१ में ये एक नव संस्थापित कमीशन (Commission Internationale de Cooperation Intellectuell) के

अध्यक्ष निर्वाचित हुए और १९२६ तक उसी पद पर बने रहे। फिर स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण उससे अलग हो गए।

अपने प्रथम बृहद् ग्रंथ (Essais sur les donnees immediates de la conscience) में बर्गसन ने मनोविज्ञान के एक नवीन समुदाय की स्थापना की है जो सर्वथा सहज ज्ञान और अंतश्चेतना पर आधारित है। उनके सिद्धातानुसार सहजबुद्धि और अतश्चेतना के द्वारा मानव ज्ञान की जो स्थिति प्राप्त करता है वह प्रमुखत भावना प्रधान है। भावनाओं का यह उद्बोधन मात्रा की दृष्टि से निरंतर परिवर्तित होता रहता है। समय तथा स्थान उसमें बाधा उपस्थित नहीं करते। फलत' वह उन्मुक्त होता है।

अपनी दूसरी पुस्तक (Matiere et Memoire) में बर्गसन ने 'विशुद्ध स्मृति' के स्वतंत्र अस्तित्व की सम्भावना को अपना आधार बनाया है। इस विशुद्ध स्मृति को वे यहाँ तक स्वतंत्र मानते हैं कि वे उसे मस्तिष्क पर भी निर्भर नहीं समझते। मस्तिष्क को तो वे मानव-शरीर से सम्बद्ध यंत्रवत् काय करने वाला एक अंग विशेष मानते हैं। फलत. विशुद्ध स्मृति की उन्होंने जो व्याख्या की है वह पूर्णरूपेण अपना एक पृथक् और स्वतंत्र अस्तित्व रखती है।

एक उदाहरण-द्वारा अपने 'गति और अतर' के सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं—"मान लो हमें एक गिलास शर्वत बनाना है। इसके लिए हम एक गिलास जल में कुछ चीनी डाल देते हैं और फिर तब तक प्रतीक्षा करते हैं जब तक चीनी घुल कर जल में मिल नहीं जाती। उस प्रतीक्षा के समय का अनुभव हम तीव्रता से करते हैं। पर अनुभूति कार्य के आरम्भ और अत भर को, जानती है—बीच के अनुक्रम को नहीं। यदि बीच के काल को कुछ विभागों में विभक्त भी किया जा सके तब भी कोई अंतर नहीं आता। क्योंकि अंतर और अनुक्रम को पृथक् समझने के लिए शरीर में कोई अवयव नहीं है।

बर्गसन के दार्शनिक सिद्धातों की कुछ दिनों तक लदन और पेरिस में

खासी चर्चा रही। इनके व्याख्यान सुनने के लिए बड़ी भीड़ एकत्र हो जाती थी।

सन् १६२७ में इनके सम्पन्न और जीवनप्रद विचारों के उपलक्ष में और उनके व्यक्त करने की शैली की श्रेष्ठता के उपलक्ष में इन्हें नोबेल-पुरस्कार प्रदान किया गया।

इनकी मुख्य रचनाएँ इस प्रकार हैं—

The Immediate Data of Consciousness. Matter and Memory. Creative Evolution.

सिग्रिड अनसेट

जन्म : सन् १८८२

सन् १६२८ का पुरस्कार प्राप्त करनेवाली महिला सिग्रिड अनसेट (Sigrid Undset) नार्वेजियन हैं। इनका जन्म डेनमार्क के बलन्दवर्ग नामक स्थान में २० मई सन् १८८२ को हुआ था। पिता नार्वे के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता थे और अपने बचपन में अनसेट उनकी मंत्रिणी का काम करती थीं। उनकी नई-पुरानी पुस्तकों को संभालकर रखना, जब जो पुस्तक माँगें तब वही लाकर दे देना, उनके लिखे कागदपत्रों की व्यवस्था करना, यह सब काम इन्हीं के ज़िम्मे था। अनसेट के जीवन पर इस कार्य का अच्छा प्रभाव पड़ा। ऐतिहासिक पिता के ऐसे निकट सम्पर्क में रहते हुए इन्हें पुरातन इतिहास की अनेक घटनाओं का यथातथ्य ज्ञान हो गया जिसका उपयोग उन्होंने भविष्य जीवन में उपन्यास लिखने में किया।

इनकी प्रारंभिक शिक्षा क्रिश्चियानिया के एक व्यापारिक स्कूल में हुई थी। शिक्षा पूरी करने के पश्चात् इन्होंने अपना जीवन अत्यंत निम्न स्तर से प्रारंभ किया। सन् १८६६ मे इन्होंने अपने शहर के ही

एक दफ्तर में क्लर्की कर ली। सन् १९०६ तक ये उसी दफ़्तर में बनी रहीं। दृष्टि बड़ी पैनी थी ही। दस वर्ष में ही नागरिक जीवन का एक समूचा और सर्वांगपूर्ण चित्र इनके हृदय में अंकित हो गया जिसने भविष्य जीवन की कल्पित योजनाओं में इनकी बड़ी सहायता की। गाँव में रहते हुए शहर के चरित्रों की ठीक-ठीक अवतारणा कर सकना अनसेट के उन्हीं दस वर्षों की क्लर्की के जीवन का फल है।

चित्रण कला की ओर इनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। कहते हैं बचपन में ये चित्रकार बनना चाहती भी थीं, जो किसी कारणवश न बन सकीं। इसलिए शब्द-चित्र प्रस्तुत करने में ये व्युत्पन्न हो गईं। इनके उपन्यासों में मानव प्रकृति और बाह्य प्रकृति के शब्दचित्रों की प्रचुरता है। जिस दृश्य को उठाती हैं, उसे आँखों के सामने लाकर खड़ा कर देती हैं।

इनके पिता की मृत्यु इनके बचपन में ही हो गई थी और तभी इन्हें गृहस्थी के भरण-पोषण की व्यवस्था करने को बाध्य होना पड़ा था। इस प्रकार दिन के सर्वोत्तम घण्टे ये दफ्तर में क्लर्की करते हुए व्यतीत करती थीं तो अवकाश के समय कुछ लिखती-पढ़ती भी रहती थीं। धीरे-धीरे इन्होंने एक उपन्यास (Fru Marta Oulie) लिख डाला जो सन १९०७ में प्रकाशित हुआ। यह इनका पहला उपन्यास था, जिसमें जैसा कि स्वाभाविक था इन्हें अधिक सफलता नहीं मिली। फिर भी इनका नाम लोगों को ज्ञात हो गया। इसके एक वर्ष बाद इनका दूसरा उपन्यास (Den Lykkelige Alder) प्रकाशित हुआ, वह भी साधारण ही रहा।

सन् १९१२ में इनका तीसरा उपन्यास 'जेनी' (Jenny) प्रकाशित हुआ जिसने इन्हें एकदम प्रसिद्ध कर दिया। इसी उपन्यास से इनकी गणना उच्चकोटि के उपन्यास लेखकों में होने लगी। इस उपन्यास में आसलो की कहानी दी गई है और यह देखकर इनके साहस की प्रशंसा करनी पड़ती है कि महिला होते हुए भी प्रेम की

समस्या का निर्वाह 'जेनी' में इन्होंने सफलता और कुशलता के साथ किया है। स्त्रियों की प्रकृति का वर्णन तो इसकी टक्कर का अन्यत्र कहीं कठिनता से ही मिल सकता है। प्रेम के पंथ पर अग्रसर होती हुई इसकी नायिका किसी सुरक्षित शरणस्थान की तलाश में है, और

सिग्रिड अनसेट

ऐसा करती-करती वह निष्फल विनाश की ओर अग्रसर हो जाती है। हाथ लगता है, केवल पतन !

इसके बाद सन् १९१४ में इनकी एक और पुस्तक (Vaaren)

प्रकाशित हुई। इसमें इन्होंने प्रेम और विवाह की समस्या को उठाया है और इस दिशा में 'जेनी' के बाद आश्चर्यजनक विकास दिखाई देता है। इस बार कहानी का अंत अंधकारपूर्ण निराशा में ही नहीं होता। लेखिका को मानों समस्या का हल मिल गया है। इस उपन्यास में दुःख और भूलों के स्थान में सुख संतोष और आशीर्वचन की प्राप्ति होती है।

शैली और भाषा की सजावट जो इस पिछले उपन्यास की विशेषता है, अगले उपन्यासों में और भी परिमार्जित रूप में सामने आती है। इन उपन्यासों में 'किंग आर्थर' (Fortallıngen om Kong Arthur og Rıdderne av det Runde Bord) की कहानी है। इसका प्रकाशन सन् १९१५ में हुआ था। इसके बाद लेखिका का झुकाव फिर महिलाओं की समस्याओं की ओर हो गया, और इस संबंध में इन्होंने कई निबंध लिखे जिनका संग्रह सन् १९१९ मे (Et Kvinde-synspunkt) नाम से प्रकाशित हुआ। इन निबंधों में स्त्री-समस्या का समाधान करते हुए इन्होंने कहा है कि जीवन में नारी का ध्येय और लक्ष्य स्वाधीनता के खयाली पुलाव पकाना नहीं है। उसका कार्य सत्य की आधार शिला पर स्थापित है। दूसरों के लिए जीवित रहना उसके जीवन की सार्थकता है। वह स्त्री है। वह माता है। सन् १९१७ मे प्रकाशित अपने एक और उपन्यास (Fru Hyelde) में भी अनसेट ने इसी समस्या पर प्रकाश डाला है। एक स्थान पर इसी संबंध में इन्होंने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं—

"Women are in no need of equality. Personally I found domestic work enchanting. Most authoresses in Norway have a domestic leaning and love to cook a good dinner A woman who fails to see the beauty of a butcher's wares is not quite as she should be I have never loved work outside my home. I would rather have polished my father's boots than have had to

obey orders from a man whom I do not know"[1]

इसी प्रकार कामरेडों पर टिप्पणी करती हुई कहती हैं—

"All words about comradeship lead to nothing It deprives the man of his feeling of obligation and responsibility towards the family, and leads him away from his natural position as a bread-winner and protector of his children"[2]

सन् १६१६ से अनसेट के हृदय को धार्मिक भावनाओं ने अभिभूत कर लिया। कारण संभवतः यह था कि उन दिनों ये १४वीं-१५वीं शताब्दी के योरप का इतिहास पढ रही थीं जब कि पाशविक बल धर्म पर मनमाने अत्याचार कर रहा था। यह अध्ययन लगातार ६ वर्ष तक चलता रहा। फल यह हुआ कि इन्हें रोमन कैथोलिक धर्म के प्रति श्रद्धा हो गई और ये उसी धर्म की अनुयायिनी हो गई। यह बात इनके पति—प्रसिद्ध चित्रकार स्वारस्तद (Svarstad)—के विचारों के प्रतिकूल थी। फलतः उन्होंने इनसे अपना संबंध तोड़ लिया। उनके साथ अनसेट का विवाह सन् १६१२ में बेल्जियम में हुआ था।

---

१ स्त्रियों को समानता के अधिकार की आवश्यकता नहीं है। व्यक्तिगत रूप से मुझे घर का कार्य बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है। नार्वे की अधिकांश लेखिकाएँ गृहस्थी का जीवन व्यतीत करतीं और अपने हाथ से भोजन पकाना पसन्द करती हैं। जिस स्त्री को खाद्य सामग्री मे सौन्दर्य नहीं दिखाई देता, वह वैसी नहीं है, जैसा उसे होना चाहिए। मुझे तो घर से बाहर का काम कभी पसन्द आया नहीं। किसी ऐसे मनुष्य का आज्ञापालन करने की अपेक्षा, जो मेरा अपरिचित रहा हो, मुझे तो अपने पिता के बूटों पर पालिश करना अधिक पसन्द था।

२ कामरेडपन के संबंध की सारी बातें व्यर्थ हैं। ये मनुष्य को पारस्परिक कृतज्ञता और उत्तरदायित्व की भावनाओं से वञ्चितकर देती हैं और उसे उसकी प्राकृतिक स्थिति—जीविकोपार्जन और सन्तान-रक्षक—से दूर ले जाती हैं।

सन् १९२१-२२ में अनसेट का एक वृहत् उपन्यास तीन खण्डों में प्रकाशित हुआ। इसका नाम 'क्रिस्तिन लेवरांसदातर' (Kristin Lavransdatter) है। लिवरान की कन्या क्रिस्तिन इस ऐतिहासिक उपन्यास की नायिका है और इसका कथानक १४वीं सदी के नार्वे के इतिहास से संबंध रखता है। इस उपन्यास के कारण अनसेट का यश समस्त सभ्य संसार मे व्याप्त हो गया। इस उपन्यास की लोकप्रियता का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि इसकी कुछ ही दिनों में ५ लाख से अधिक प्रतियाँ बिक गई थीं और इसने अनसेट को साधारण स्थिति से उठाकर धनवानो की श्रेणी में बिठा दिया था।

इसके बाद १९२५ मे इनका एक और उपन्यास (Olav Audunsson i Hestviken) प्रकाशित हुआ जिसका कथानक तेरहवीं शताब्दी के इतिहास पर आधारित है। और उसके बाद एक और उपन्यास (Olav Audunsson og hans born) प्रकाशित हुआ जो पहले उपन्यास के उत्तरार्ध के रूप मे है। सन् १९२९ मे इन्होंने दो उपन्यास और भी प्रकाशित कराए, एक 'दी सरपेन्ट्स केव' (The Serpents' Cave) और दूसरा आधुनिक समय की एक कहानी (Gymnademi), जिसमें वर्त्तमान नार्वे के सामाजिक, सास्कृतिक और साहित्यिक जीवन का चित्र उपस्थित किया गया है।

अनसेट की सबसे बडी विशेपता यह है कि ये अपने पात्रों का मनोविश्लेषण बहुत कुशलता से करती हैं और साथ ही अतीत और वर्त्तमान दोनों कालों की मनोवृत्तियों और चरित्रों का चित्रण करने मे समान रूप से सिद्धहस्त हैं। अपनी मातृभूमि के मध्यकालीन इतिहास के चरित्रों का चित्रण करने की इनकी अपनी एक विशेष शैली है जिसमें स्केण्डेनेविया की पुरानी वीरगाथाओं वाली पद्धति और आधुनिक काल की मनोविश्लेपणात्मक प्रणाली—दोनों का सुंदर सामञ्जस्य दिखाई देता है।

मध्यकालीन स्कैण्डेनेविया के जीवन के सफल चित्रणों के उपलक्ष

में इन्हें नोवेल-पुरस्कार प्रदान किया गया था। जब इनके नोबेल-पुरस्कार पाने की सूचना अखबारों में निकली तब विभिन्न पत्रों के संवाददाता—जैसा कि उनका स्वभाव होता है—इनके घर जा पहुँचे। उस समय ये अपने बच्चों को सुलाने जा रही थीं। पत्र-सम्वाददाताओं को देखते ही ये बड़ी सरलता से बोलीं—

"मैं आप लोगों के कष्ट करने का कारण जानती हूँ। अभी-अभी एक केबिल द्वारा मुझे सूचना मिली है, कि इस वर्ष का नोबेल-पुरस्कार मुझे दिया गया है। इससे मुझे प्रसन्नता अवश्य हुई है, पर उससे अधिक प्रसन्नता मुझे अपने बच्चों के साथ रहने में होती है। यह समय दर्शन की चर्चा करने का नहीं है, इसलिए मैं क्षमा चाहती हूँ।"

अनसेट को अपने ग्राम से बहुत प्रेम है। वे सदा अपने घर पर रहती हैं और शायद ही कभी बाहर निकलती हैं। इस संबंध में उनके आदर्श भारतीय आदर्शों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। सवेरे का समय वे लिखने में व्यतीत करती हैं, फिर घर का काम करती हैं। संध्या के समय अपने घर के पास के बगीचे में निकल जाती हैं। जिसमें रंगविरंगे फूल खिले रहते हैं। आज-कल अपनी पुस्तकों की आय से वे काफ़ी धनाढ्य हो गई हैं। अपना घर भी अब उन्होंने प्राचीन काल के महलों के ढंग का बनवाया है। नार्वे के मध्यकालीन इतिहास से उन्हें इतना प्रेम हो गया है कि वे अपने को उसी रंग में रँग डालना चाहती हैं।

उनकी पुस्तकों के निम्न अंग्रेज़ी अनुवाद प्रसिद्ध हैं—

Kristin. The Axe. The Snake Pit. The Son Averger Jerny.

थामस मान

जन्म : सन् १८७५

सन् १९२९ के पुरस्कार-विजेता थामस मान (Thomas Mann) जर्मनी-निवासी हैं। ६ जून, १८७५ को ल्यूबक (Lubeck) की पुरानी नगरी 'हैंसा' (Hansa) में इनका जन्म हुआ था। पितृवंश मेकालिनबर्ग (Mecklenburg) का नागरिक था, जहाँ से आकर ल्यूबक में रहने लगा था। उन दिनों 'होली रोमन एम्पायर' का सूर्य मध्याह्न में था और मान के पूर्वज उसके व्यापार वर्ग में अपना प्रतिष्ठित स्थान रखते थे।

थामस मान की माता ब्रेजिल की थीं। मान का बचपन अधिकांश में ल्यूबक में व्यतीत हुआ। जब कुछ बड़े हुए तब आजीविका की चिन्ता हुई। शिक्षा अधिक थी नहीं, अतएव म्यूनिश चले गए और वहाँ एक 'आग-बीमा-कम्पनी' के दफ्तर में क्लर्की करने लगे, बिना कुछ लिए-दिए ही। कारण, कम्पनी को काम न जाननेवाले क्लर्कों की ज़रूरत नहीं थी, और इन्हें काम सीखना ही था।

कल्र्की की चक्की से बीच-बीच समय पाते तो कहानियों पर क़लम आज़माते। धीरे-धीरे कुछ कहानियाँ इकट्ठी हो गईं। उन्हें संग्रह करके स्वयं सम्पादित किया, और सन् १८९८ में, जब कि इनकी अवस्था २३ वर्ष की ही थी, उस संग्रह (Der Kleine Herr Friedemann) को छपवा दिया। इन प्रारंभिक कहानियों ने ही कह दिया कि लेखक आगे चलकर संसार के ज्ञानभंडार में बहुत कुछ वृद्धि करेगा। इस प्रकार मान उन भाग्यशाली लेखकों की पक्ति में आते हैं जिनकी लेखनी प्रारंभ ही से सफल मान ली जाती है। भाषा की सुघड़ता और मनोविश्लेषण की गम्भीरता की दृष्टि से इनकी कहानियाँ उच्च कोटि की थीं। मान की लेखनी की ये दोनों विशेषताएँ उनकी परवर्ती रचनाओं में भी समान रूप से पाई जाती हैं।

पिता का देहान्त हो जाने पर थामस मान ने क्लर्की छोड़ दी क्योंकि वह उनकी साहित्यिक चेतना के अनुकूल न पड़ती थी। अब सम्पूर्ण मन और प्रयत्न से ये सर्जन कार्य में जुट गए। इन्ही दिनो इन्हें कुछ ऐसा लगा कि उत्कृष्ट लेखक बनने के लिए जिन दो बातों की
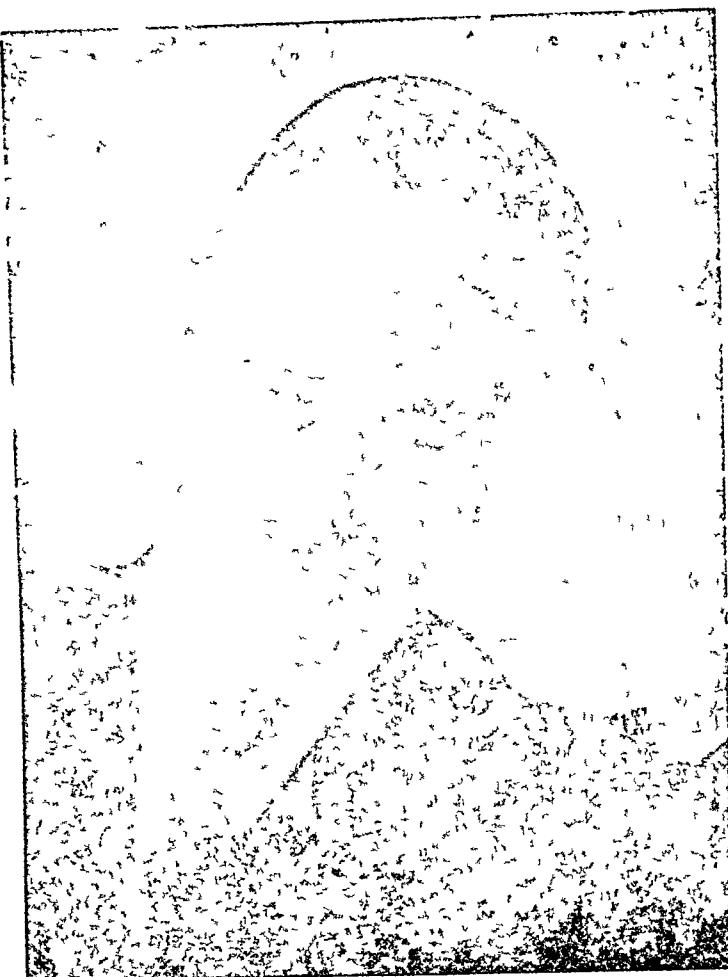
थामस मान

आवश्यकता है, उनका मेरे पास अभाव है। पहली वस्तु है उच्च-शिक्षा, जिसके लिए ये म्यूनिश विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हो गए और कुछ समय तक वहाँ अध्ययन करते रहे। वहाँ से फिर दूसरी वस्तु 'देशाटन'

के लिए निकले और इटली पहुँचे। रोम सारे योरप में कला और संस्कृति का केन्द्र समझा जाता है, अतः वहीं जाकर इन्होंने डेरा जमाया और सस्कृति-समवाय का ये ध्यान-पूर्वक अध्ययन करने लगे।

उन्हीं दिनों एलवर्ट लेञ्जन (Albert Langen) नाम के एक सज्जन एक पत्र निकालते थे, जिसमे सामयिक घटनाओं की आलोचना व्यंग्य-चित्रों द्वारा की जाती थी। इसका नाम था—Simplizzissimus। थामस मान इसका सम्पादन करने लगे। इस रूप में जनता के ये अधिक निकट आ गए।

ये दिन थामस की उस अवस्था के थे जब यौवन की उमंगें चित्त को 'कुछ करने के लिए' अस्थिर किए रहती हैं। थामस भी इसके अपवाद न थे। मन की उसी उमंग में इन्होंने अपना सर्वश्रेष्ठ उपन्यास (Die Buddenbrooks) लिखा। यह उपन्यास इनका 'मास्टरपीस' समझा जाता है। यह चित्ताकर्षक और प्रख्यात रचना उस कुलीन जाति के चित्रोपम उल्लेखों से परिपूर्ण है जो योरप में 'हेन्सियाटिक पैट्रीशियन' (Hanseatic Patrician) के नाम से विख्यात हैं। साथ ही 'आत्मकथा' का रस भी इसमें प्रचुर मात्रा में मौजूद है। इस पुस्तक के जर्मन भाषा में अब तक दो सौ से अधिक संस्करण हो चुके हैं। संसार मे शायद सभ्य-भाषा ऐसी एक भी न होगी, जिसमें इसका अनुवाद न हो गया हो।

पूर्वकथित ८ कहानियों के संग्रह (Der Kleine Herr Friedemann) में दी हुई कहानियों-द्वारा मान ने अनेक सामाजिक समस्याओं के सुलझाने का प्रयत्न किया है जिनमें—'कलापूर्ण जीवन', 'अन्तर्जातीय विवाह' आदि प्रमुख हैं। सभ्य नागरिकों के लिए इस प्रकार की समस्याएँ उन दिनों पहेली बनी हुई थीं। मान ने इन्हें केवल 'व्यक्तिगत बात' मानकर इनसे घृणा करनेवालों अथवा इन्हें अनुपयुक्त समझनेवालों का पथ-प्रदर्शन किया है।

इसी प्रकार अनेक परवर्त्ती रचनाओं (Bajazzo, Torio

Kroger) द्वारा मान ने जीवन के विषय में अपना निश्चित दृष्टिकोण उपस्थित किया है। 'बुडनब्रुक्स' का उपनाम इन्होने 'पतनोन्मुख वंश' भी रक्खा है। इसमें एक परिवार के पतनोन्मुख चरित्र का अंकन बड़ी सुंदरता से हुआ है। वह परिवार पहले पूर्णतया स्वस्थ है। किसी प्रकार की परंपरागत आधि-व्याधि उसमें नही पाई जाती। धीरे-धीरे उसमें नैतिक चंचलता के लक्षण प्रकट होते हैं जो कालान्तर में दुर्बल-भावुकता बन जाते हैं। अन्ततोगत्वा वंश की स्थिरप्रज्ञता विलीन हो जाती है और उसकी सन्तानें दुर्बल मस्तिष्क वाली होती हुई उन्माद का शिकार बन जाती हैं।

प्रारभ में ही जीवन को नई शैली में चित्रित करने में थामस मान को जो सफलता मिली उसने इनके साहित्यिक कार्य की दिशा निर्धारित कर दी। सन् १६०५ में इन्होंने स्थानीय विश्वविद्यालय के एक ख्यात-नामा प्रोफेसर की विदुषी कन्या का पाणिग्रहण किया। विवाह के उपरान्त ये स्थायी रूप से म्यूनिश में बस गए। उन्हीं दिनों इन्होंने अपने को कष्टमहिष्णु बनाने का अभ्यास करना प्रारंभ कर दिया। चौबीस घंटो में विश्राम के लिए बहुत थोड़ा समय था। शेष पूरा समय साहित्य के पठन और सर्जन में व्यतीत होता था। इस अनवरत साधना के फलस्वरूप कई सुंदर कहानियाँ और उपन्यास प्रकाश में आए। इन उपन्यासों और कहानियों में भी जीवन की मनोवैज्ञानिक विविधता और द्वन्द्वों की उलझन का समावेश हुआ है जो कि मान के साहित्य की विशेषता है। इस युग की प्रमुख पुस्तको में 'ट्रिस्ट्रन' (Tristan)—१६०३ में प्रकाशित, 'देर ताद इन वेनदिग' (Der Tod in Venedig)—१६१२ में प्रकाशित और 'तोनियो क्रोजर' (Tonio Kroger)—सन् १६१४ में प्रकाशित, के नाम गिनाए जा सकते हैं। इन्हीं दिनों इनकी पुस्तक 'बुडनब्रुक्स' के विरुद्ध जनता में एक आन्दोलन चल पड़ा। लोग कहने लगे कि "मान ने उत्तेजनापूर्ण साहित्य का निर्माण करके जनता का अहित करने का प्रयत्न किया है। इनका

साहित्य इस दृष्टिकोण से वैसा ही है जैसा कि बिल्से (Bı se) का, जो निम्नवर्ग की रुचि के अनुकूल निम्नकोटि की कहानियाँ लिखकर काफ़ी बदनाम हो चुके हैं।"

इसके कुछ ही बाद मान ने एक पुस्तक (Bılse und ıch) ऐसी लिखी जिसने इनकी कीर्त्ति को फिर उज्ज्वल कर दिया। इनकी दूसरी पुस्तक (Konoglıch)—जिसके सम्बन्ध में इनका कथन है कि वह प्रहसन लिखने के प्रयत्न मे लिख गई है, सन् १६०६ में प्रकाशित हुई। इससे भी इनकी बहुत प्रशसा हुई। इस पुस्तक में लेखक के अपने शब्दों में—"प्रेम-द्वारा मुक्ति प्राप्ति के उपाय बतलाए गए हैं।" साथ ही 'कार्य' और 'सुख' के पुरातन विरोध पर प्रकाश डालते हुए उसे (विरोध को) दूर करने का प्रयत्न किया गया है। श्रमिक का एकान्त जीवन, उसकी असुविधाएँ, उसका कार्य और उसकी मानसिक विवशताएँ अंत मे जाकर जीवन, प्रेम और सुख में अंतर्भूत हो जाती हैं। लेखक की प्रारभिक रचनाओं के पात्र जीवन के पाशविक सुखों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हुए दु ख में पड़ते दिखाई देते हैं। पर एक कहानी (Fıoıenza), जो सन् १६०५ में प्रस्तुत हुई थी, ऐसी भी है, जिसमे जीवन के निषेधों पर आत्मा की विजय दिखलाई गई है। इसमें यह सिद्ध किया गया है कि अभिलाषा स्वयं एक प्रकार का सुख है। और उत्साहपूर्ण साहस से ही वीरता की उत्पत्ति होती है।

थामस मान 'फ्रेडरिक दि ग्रेट' (Frederıck the Great) पर एक पुस्तक लिख रहे थे। उन्हीं दिनों महायुद्ध प्रारंभ हो गया। इस पुस्तक मे इन्होंने जर्मनी की आक्रामक नीति का समथन जोरों से किया है। फलत इनके जैसे सर्वप्रिय लेखक की रचना की प्रतिक्रिया दो विभिन्न स्वार्थ रखने वाले जन वर्ग में दो रूपों में दिखाई दी। एक मत ने थामस मान की प्रशंसा की और दूसरे ने उन्हें गालियाँ दीं। यह बात बाहरी लोगों तक ही सीमित न रही। मान के सगे भाई 'हेनरिक मान' (Heınrıch Mann) भी इनके सब से अधिक कटु-आलोचक

बन बैठे। परिणाम यह हुआ कि अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिए थामस मान को एक दूसरी पुस्तक (Betrach tungon eines Unpol tischen) सन् १६१८ में लिखनी पड़ी।

इसके बाद इन्होंने अपना एक और निबन्ध-संग्रह, जिसमें राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक और कला-संबंधी प्रश्नों पर अपने विचार प्रकट किए हैं, सन् १६२२ में प्रकाशित हुआ। इन निबन्धों में से अनेक मान ने बहुत पहले लिखे थे, फिर भी उनका वैसा ही महत्त्व अब तक बना हुआ है, जैसा तब था, जब वे लिखे गये थे। ठीक ऐसा ही इनका एक दूसरा निबन्ध-सग्रह (Bekenntnisse des Hochstaplers Felix krul) भी है जो सन् १६२३ में प्रकाशित हुआ था। थामस मान के ये दोनों निवन्ध-संग्रह आज तक साहित्य, समाज, राजनीति और कला के क्षेत्रो में वाद-विवाद के विषय बने हुए हैं। यद्यपि उनके समर्थको की संख्या विरोधियो की संख्या से कहीं अधिक है।

फ्रेडरिक द्वितीय पर लिखी अपनी पुस्तक में थामस मान ने एक सम्राट् की प्रकृति की द्विधात्मकता पर आश्चर्यजनक रूप से प्रकाश डाला है। पिछले दिनो भी जर्मनी को 'शक्ति' और 'बुद्धि' को एक में मिलाने की जव प्रेरणा हुई थी तब मान के ग्रंथों ने ही मार्गप्रदर्शन किया था। इससे विदित होता है कि नाजुक समस्याओ पर प्रकाश डालते हुए भी थामस मान स्वयं के प्रति सदैव सच्चे ही रहे हैं।

इन पुस्तको-द्वारा अपने मन का बोझ उतार कर मान फिर हलके साहित्य की ओर मुड़े। उन्होंने राजनीति के विषय का सहर्ष त्याग कर दिया क्योंकि उन्हें उसमें अधिक दिलचस्पी न थी। अव वे बच्चों के काम का साहित्य निर्माण करने में लग गए। इस संबंध में उन्होंने दो पुस्तकें (Gessang vom Kindchen और Herr Und Hund) लिखी जो विस्तारपूर्ण शैली और रोचकता के कारण बच्चों-द्वारा बहुत पसन्द की गईं। एक गम्भीर लेखक की ऐसी बालप्रिय

रचनाएँ पाठकों और आलोचकों के लिए समान रूप से आश्चर्य और प्रसन्नता का विषय बन गईं।

अपनी कुछ रचनाओं में मान ने समाज का यथार्थ चित्र उपस्थित किया है। और इसी विशेषता के कारण वे प्रसिद्ध भी हैं। इनमें सन् १९१४ में प्रकाशित उनकी कहानियों की १४ मोटी जिल्दें (Das Wunderkind), सन् १९२६ में प्रकाशित एक उपन्यास (Unordnung und Fruhes Laid), सन् १९२४ मे दो मोटी जिल्दों में प्रकाशित उपन्यास (Der Zauberberg) की गणना है।

अपने प्रसिद्ध उपन्यास (Die Buddenbrook) के उपलक्ष में ही इन्हें सन् १९२९ का साहित्यिक नोबेल-पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इस उपन्यास की लोक-प्रियता उत्तरोत्तर बढती जा रही है और सम-सामयिक साहित्य में यह उच्चकोटि का समझा जाता है।

थामस मान आजकल प्रेग मे निवास कर रहे हैं। इनकी निम्न पुस्तकें प्रख्यात हैं—

Buddenbrooks. Magic Mountain. Death in Venice Early Sorrow. Maris and the Magician.

सिन्क्लेयर लूई

जन्म : सन् १८८५

साहित्य में नोबेल-पुरस्कार पाने वाले अमेरिका में सिन्क्लेयर लूई (Sinclair Lewis) प्रथम विद्वान् हैं। इनका जन्म ७ फ़रवरी, १८८५ को साक सेण्टर, मिन, में हुआ था। २२ वर्ष की अवस्था में येल विश्व-विद्यालय (Yale University) से ग्रेजुएट होकर इन्होंने साहित्यिक-

जीवन में प्रवेश किया। प्रारंभ जैसा कि साधारण नियम है, पत्रकार-कार्य से किया। यह कार्य करते हुए अमेरिका के कई प्रमुख प्रकाशकों से इनका निकट संपर्क हो गया। फिर कई पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकीय विभागों में चक्कर लगाते हुए अन्त में ये लेखन-कार्य पर उतर पड़े।
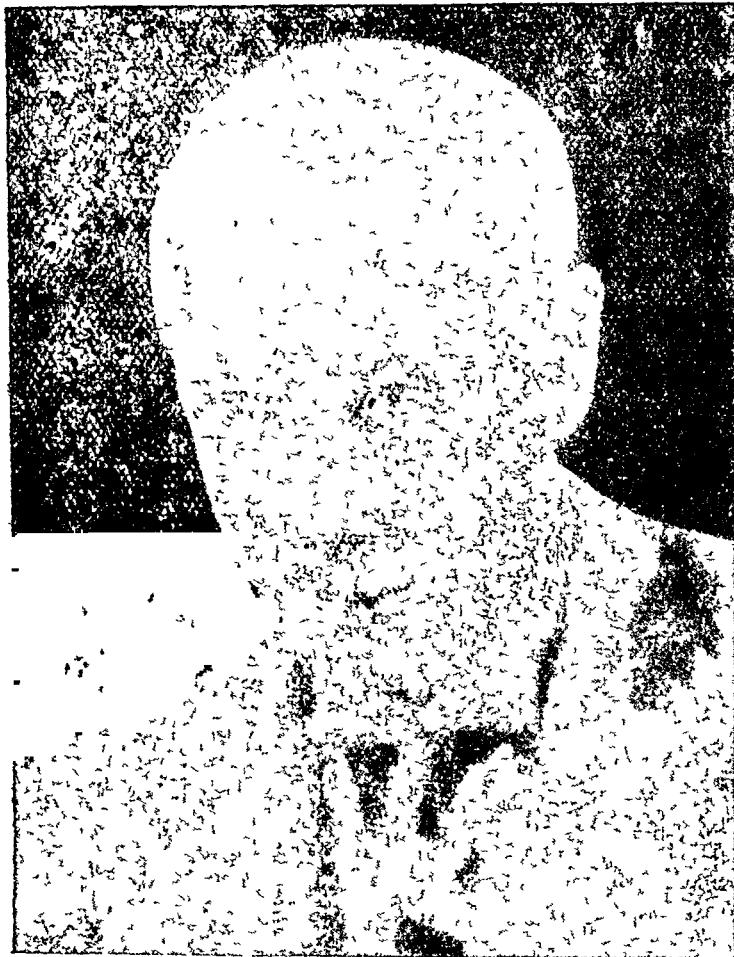
सिन्क्लेयर लूई

लेखन-कार्य में इन्हें एक बड़ी बाधा का आरंभ से ही सामना करना पड़ा। अमेरिका में अंगरेज़ी भाषा का प्रचार है, क्योंकि अमेरिकन उसी नस्ल के हैं जिस नस्ल के इंगलैण्ड-निवासी। फिर भी अमेरिका की अँगरेज़ी को इंगलैण्ड-निवासी उन दिनों नीची निगाह से देखते

थे। वे अमेरिका के अच्छे-से-अच्छे लेखकों को इंग्लैण्ड के सामान्य लेखकों के समकक्ष मानने को तैयार नहीं होते थे। उनका कथन था कि अमेरिका के लेखकों में मौलिकता का सर्वथा अभाव है। वे अपने सभी लेखों में इंग्लैण्ड के लेखको के न केवल शब्द और भाव चुराने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं, उनके मुहावरो, व्यर्ण्यविषय और वातावरण की नकल करने की भी उपहासात्मक चेष्टा करते हैं। उनकी कृतियों में गहराई नहीं रहती। इग्लैण्ड के साहित्यिको का यह दुराग्रह न केवल अमेरिका के लेखकों के सम्बन्ध मे है, ससार के किसी देश के लेखक के सम्बन्ध में, जो उनकी मातृभाषा अगरेजी मे साहित्य-सर्जन करता है, उनके ऐसे ही विचार रहते हैं। ऐसी वस्तुस्थिति में, अँगरेज़ी में लिखते हुए, किसी प्रकार की मान्यता प्राप्त कर सकना लुई के लिए तब तक असंभव ही था जब तक ये विलक्षण प्रतिभा और व्युत्पत्ति का प्रदर्शन न करें।

सन् १९१४ में जब इनका प्रथम उपन्यास 'अवर मिस्टर रेन' (Our Mr. Wrenn) और १९१५ में दूसरा उपन्यास 'दी ट्रेल ऑफ़ दी हॉक' (The Trail of the Hawk) प्रकाशित हुए तब उनके लिए इन्हें कोई विशेष सम्मान न दिया जा सका। साधारण पाठक की उनके सबंध में यही धारणा हुई कि जैसे और सस्ते उपन्यास गली गली में मारे-मारे फिरते हैं, वैसे ये भी हैं। जिनमें चरित्र-चित्रण और वातावरण की कौन कहे, फूलों और पक्षियों के नाम तक स्वदेश के नहीं होते। केवल इंग्लैण्ड की प्रशसा के ही झूठे गीत सर्वत्र गाए जाते हैं। पर १९२० में जब इनका 'मेन स्ट्रीट' (Main Street) उपन्यास प्रकाशित हुआ तव पाठक आश्चर्य में आ गए। 'मेन स्ट्रीट' में जो कुछ भी है, एकदम अमेरिकन ! उस पर इंग्लैण्ड के जीवन की रंचकमात्र छाया नही है। उसकी पृष्ठभूमि में पश्चिमोत्तर अमेरिका के भारी-भरकम नगर हैं और कथानकों का चुनाव उनकी तंग और संकुचित सड़कों, पतली गलिया और समाई से अधिक जनसंख्या को

स्थान देने वाले तीस-तीस मंज़िल के महलों से किया गया है। आधुनिक अमेरिका के दैनिक जीवन पर ऐसी चुभती टिप्पणियाँ इससे पूर्व अन्यत्र कहीं नहीं मिली थीं और न वहाँ के नागरिकों के चरित्रों का यथातथ्य विश्लेषण ही इतनी सफलता के साथ अब तक किसी लेखक ने किया था। इसे पढ़ते समय पाठक को लगता है कि इसमें हँसी उड़ाई अवश्य गई है, पर मेरी नहीं, किसी ऐसे व्यक्ति की, जो मेरे ही जैसा है या मेरे निकट का है और जिसके जीवन से मुझे शिक्षा लेनी चाहिए।*

लूई के इस उपन्यास ने अमेरिका के नागरिकों में विचित्र प्रकार की सनसनी पैदा कर दी जिसकी लहर एक साथ सारे देश में व्याप्त हो गई। अपने दैनिक जीवन का कच्चा चिट्ठा उनके देखने मे अब तक न आया था। लूई ने उन्हें ठीक से बतला दिया कि सभ्य संसार के सामने बढ-बढ़कर अपना उत्कर्ष प्रमाणित करने वाले अमेरिकन नागरिक सामाजिक दृष्टि से किस स्तर पर हैं।

उसके बाद सन् १६२२ मे लूई का दूसरा उपन्यास 'बैबिट' (Babbit) प्रकाशित हुआ। 'मेन स्ट्रीट' के बाद इसकी प्रतीक्षा जनता उत्सुकता के साथ कर रही थी। इसके उत्कर्ष का पता इसी से लगाया जा सकता है कि यह अमेरिका का बीसवीं सदी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है। अमेरिका के विद्वान् समालोचकों का मत है कि 'बैबिट' वह दर्पण है, जिसमें प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक अमेरिकन नागरिक को अपने चरित्र की छाया देखने को मिल जाती है। एक और समालोचक इसके सबंध में लिखता है—"इस शताब्दी में लिखी पुस्तकों में से कुछ ही ऐसा पूर्ण, ऐसा विस्तृत और ऐसा स्वस्थ प्रभाव डालने वाली होंगी जैसी कि श्री लूई की 'बैबिट' है।"

'बैबिट' की शैली व्यंग्यपूर्ण है। पढ़ते-पढ़ते ऐसा लगता है कि

---

* It is a mirror held up not to my own nature, but to the nature very close to my own.

कुशल लेखक दैनिक जीवन के एक कल्पित पात्र को उठा कर ध्यान मे देखता है, उसकी विचित्रता पर मुस्कराता है और फिर उसे उठाकर एक ओर रख देता है और दूसरे पात्र को उठा लेता है। ये सब पात्र एक ही देश, काल और समाज के अंग हैं। फलतः उपन्यास के तारतम्य में किसी प्रकार का अन्तराय नहीं आने पाता।

'बैबिट' के बाद 'मार्टिन एरोस्मिथ' (Martin Arrowsmith) प्रकाशित हुआ जिसने लुई को सफलता के उच्चतम स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया। इस उपन्यास पर इन्हें अमेरिका का प्रख्यात सर्वश्रेष्ठ साहित्य-पुरस्कार 'पुलिट्ज़र प्राइज़' (Pulitzer Prize) जब समर्पित किया जाने लगा, तब इन्होंने उसे स्वीकार करने से यह कहते हुए इकार कर दिया कि 'ऐसे पुरस्कार बड़े भयानक होते हैं।'

'मार्टिन एरोस्मिथ' में डाक्टरों की अच्छी ख़बर ली गई है। नवीन विज्ञान की धारणाएँ कितनी असफल हैं, इसका पता इस उपन्यास के पढ़ने से अच्छी तरह लग जाता है। इसके बाद उनके 'मैनट्रेप' (Mantrap) और 'एल्मर जेण्ट्री' (Elmer Gentry) उपन्याम प्रकाशित हुए जिन्हें कला की दृष्टि से अधिक सफल नहीं कहा जा सकता। इनमें से 'एल्मर जेण्ट्री' में तो तात्कालिक परिस्थितियों की आलोचना कटुता के उस स्तर तक पहुँच जाती है, जिसे गाली-गलौज कहा जा सकता है। पर इसका एक कारण भी है। उन दिनों अमेरिका के धार्मिक सम्प्रदाय में ऐसे लोगों का बोलबाला हो रहा था जिनका आचरण नितांत नीचे दर्जे का था। मद्य-निषेध का आंदोलन उन दिनों अमेरिका के चर्च का प्रधान आंदोलन था जिसकी आड़ में तथाकथित धर्म के ये ठेकेदार ख़ूब खुलखेल रहे थे। फल यह हुआ कि लुई के इस उपन्यास को लेकर एक वर्ग विशेष में काफी हलचल मच गई और यत्र तत्र वाद-विवाद होने लगे।

पर इनके दूसरे उपन्यास 'दि मैन हू न्यू कूलिज' (The Man who knew Coolidge) ने 'एल्मर जेण्ट्री' द्वारा उत्पन्न कटुता को

शीघ्र ही शांत कर दिया। यह उपन्यास सामाजिक है जिसमें कथोप-कथन-द्वारा नायक का परिचय कराया गया है।

डाडस्वर्थ (Dodsworth) लुई का अंतिम उपन्यास है। इसे सब से अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है, फलस्वरूप अल्पकाल में ही इसके अनेक संस्करण हो गए हैं। इसमें एक अमेरिकन पूँजीपति के सपत्नीक योरप-भ्रमण का विवरण दिया गया है।

एक प्रसिद्ध पत्र ने लूई की कला का परिचय इस प्रकार दिया है— "मध्यमवर्ग की एक विशेष प्रकार की जनता का कथा के रूप में पूर्ण चित्र उपस्थित कर देना इनकी कला की सब से बड़ी सार्थकता है। इस प्रकार की जनता किसी विशेष स्थान, विशेष समाज में नहीं पाई जाती, वह शांत कोहरे की तरह सर्वत्र दिखाई देती है। इस कोहरे को मिस्टर लूई सिन्क्लेयर ने अपनी कला-द्वारा मूर्त्तरूप प्रदान कर दिया है। उनके द्वारा निर्दिष्ट स्थान विशेषों का अर्थ यह कदापि नहीं है कि उस प्रकार के लोग वहीं पाए जाते हैं; प्रत्युत अमेरिका ही नहीं, जहाँ कहीं टाइप राइटर चलते होंगे, मज़दूरी की दर ऊँची होगी, शिक्षा मुफ़्त होगी, सिनेमाघरों की अधिकता होगी, और सरकार 'जनता की जनता द्वारा संचालित और जनता के लिए' होगी। अपनी कला-द्वारा लूई सिन्क्लेयर ने मध्यवर्ग की जनता को अप-टु-डेट' बना दिया है।"

सन् १९३० में 'उनकी महत् और सजीव कला के लिए, जो जीवन का चित्रण करने में पूर्ण समर्थ है, और उनकी व्यंग्यपूर्ण शैली की सार्थक सफलता के लिए' उन्हें नोबेल-पुरस्कार प्रदान किया गया था।

पुरस्कार-ग्रहण के समय स्टाकहाम में दिए हुए व्याख्यान में लूई सिन्क्लेयर ने तत्कालीन अमेरिकन जीवन पर अच्छा प्रकाश डाला है। अमेरिका का नागरिक जीवन आज तक उसी धरातल पर है, जहाँ पूर्व के दिनों था। लूई का कथन है—

"उन लोकप्रिय पत्रों के लेखकों का हम अब भी सम्मान करते हैं जो विश्वासपूर्वक यह दावा करते हैं कि अमेरिका दस करोड़ जन-संख्या

हो जाने पर भी अभी तक वैसी ही भोली-भाली और गावदी है जैसी कि उस समय थी जब कि उसकी जन-संख्या चार करोड़ मात्र थी। सन् १८४० की फ़ेक्टरियों में से प्रत्येक में केवल ५ मज़दूर काम करते थे, और मजदूर और प्रबन्धक पड़ोसियों की भाँति रहते थे। आज भी वही दशा है, जब कि हमारी प्रत्येक फ़ेक्टरी में कम-से-कम १० हज़ार मनुष्य काम कर रहे हैं। पिता और पुत्र, पति और पत्नी के बीच के सम्बन्ध भी अब तक, जब कि वे ३० मंजिल वाले महल के एक भाग में सुखपूर्वक रहते हैं, तीन-तीन मोटरकार उनके परिवारवालों की प्रतीक्षा में नीचे खड़ी रहती हैं, उनके पारिवारिक पुस्तकालय की आलमारी में ५ पुस्तकें दिखाई देती हैं और प्रति सप्ताह तलाक़ का एक मामला उनके कुटुम्ब से अदालत मे पहुँचा करता है, निश्चय ही उसी तरह के हैं, जैसे सन् १८८० में थे जब कि वे ५ कमरों वाले, गुलाब के फूलों से घिरे छोटे बँगले में रहा करते थे। यद्यपि अमेरिका में क्रांतिकारी परिवर्त्तन हो चुके हैं, एक देहाती राज्य से बढकर वह संसार का महान् साम्राज्य बन चुका है, पर उसकी गड़ेरियों के युगवाली आदतें वैसी ही बनी हैं, जैसी कि 'टाम काका' के समय में थीं।"

लूई की निम्न रचनाएँ अधिक प्रसिद्ध हैं—

Our Mr Wrenn The Trail of the Hawk The Job Free Air Main Street. Babbit Martin Arrowsmith Mantrap Elmer Gentry. Man who knew Coolidge Dodsworth

कार्लफ़ेल्ट

जन्म : सन् १८६४ मृत्यु · सन् १९३१

सन् १९३१ के नोबेल-पुरस्कार विजेता एरिक एक्सिल कार्लफ़ेल्ट (Erik Axel Karlfeldt) का असली नाम 'जान्सदोतर' (Jansdotter) था। वे स्वेडन निवासी थे। सन् १८६४ में उनका
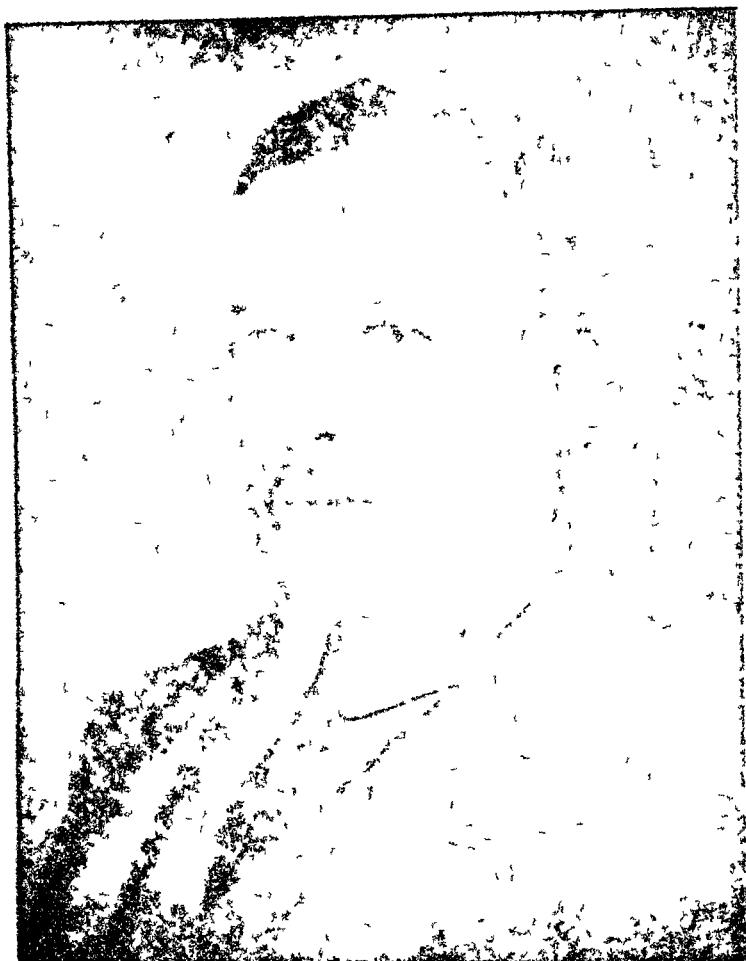
कार्लफ़ेल्ट

जन्म फार्लेवा, फोकार्ना, डिलेकालिया में हुआ था। उनके एक खेत का नाम 'कार्लफ़ेल्ट' था और उसी नाम को प्रसिद्ध करने के अभिप्राय

से उन्होंने यही नाम सन् १८८६ से अपना लिया। प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा अपने गाँव में ही हुई। उसके बाद १८८७ में वास्त्रा (Vasleras) के सेकेण्डरी स्कूल में भर्ती हुए जहाँ से सन् १८८५ में मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षा पास की। उसके बाद १८८५ से १८६८ तक उपसाला विश्वविद्यालय में पढ़ते रहे। अपनी आजीविका का आयोजन इन दिनों उन्हें स्वयं करना पड़ता था, इसलिए बीच-बीच में व्यवधान भी आ जाता था। इस प्रकार रुकते, फिर आगे बढते सन् १८६३ में उन्होंने दर्शनशास्त्र की प्रवेशिका-परीक्षा पास करली और उसके ६ वर्ष बाद १८६८ में 'लाइसेन्शियेट-परीक्षा' (Licentiate Examination) सन् १८६३ में जरशाम (Djursholm) के एक प्राइवेट स्कूल में उन्हें नौकरी मिल गई जिस पर १८६५ तक बने रहे। सन् १८६६ से मोलकम के 'पापुलर हाई स्कूल में अध्यापक हो गए, साथ-साथ स्टाकहाम से प्रकाशित होने वाले एक पत्र के सम्पादकीयविभाग का काम भी करते रहे।

अध्ययन पूरा होने पर स्टाकहाम की रॉयल लायब्रेरी में कार्य-सचिव (Amanuensis) का कार्य उन्हें मिल गया था जो साथ-साथ चलता जा रहा था। इसके बाद वे 'एग्रीकल्चरल एकेडेमी' में पुस्तकाध्यक्ष बना दिये गये। कवि के रूप में उनकी ख्याति इन्हीं दिनों में प्रारंभ हुई थी। १६०४ में वे 'स्वीडिश एकेडेमी' में आ गए और १६०५ में उसी एकेडेमी की 'नोवेल इस्टीट्यूट' में हो गए। उसके दो वर्ष बाद वे 'नोवेल कमिटी' के सदस्य निर्वाचित हुए।

सन् १६१२ से वे एकेडेमी के स्थायी सेक्रेटरी बना दिए गए। उस समय से लेकर अन्त तक वे वहीं रहे और अपना पूरा समय एकेडेमी की व्यवस्था और साहित्य की आराधना में लगाते रहे। सन् १६१७ में उपसाला विश्वविद्यालय ने इन्हें सम्मानार्थ 'डाक्टरेट' प्रदान कर दी।

स्कूल में पढने के दिनों से ही उन्हें विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अपनी रचनाएँ छपवाने का शौक लग गया था। उनकी प्रारंभिक रचनाओं

का प्रथम संग्रह (Vildmarks och Karleksvisor) सन् १८९५ में प्रकाशित हुआ। इसके बाद दूसरा संग्रह (Fridolins Visor) १८९८ में निकला। फिर तो १९२७ तक इनके ४ कविता-संग्रह और निकले। इनके नाम क्रमशः (Fridolins Lustgard, Flora och Pomona, Flora och Bellona और Hosthorn हैं।

इसके बाद इन्होंने स्वेडन के महाकवि ल्यूसीदर (Lucidor) की एक सुन्दर जीवनी लिखी जो स्वीडिश एकेडेमी-द्वारा सन् १९०९ में प्रकाशित हुई। सन् १९२१ में 'कार्ल फ्रेडरिक दालजर्न' (Carl Frederik Dahlgren) का चरित्र भी उक्त संस्था-द्वारा ही प्रकाशित हुआ।

अपने जीवन के अन्तिम दशक में उत्सवों के वक्ता के रूप में उनकी ख्याति देश भर में व्याप्त हो गई थी। लोगों का कहना है कि उनके बाद उत्सवों पर सुन्दर वक्तृताएँ देने वाले का सर्वथा अभाव ही हो गया है। उनकी अवसरोपयोगी वक्तृताओं का संग्रह उनकी मृत्यु के कुछ महीने बाद सन् १९३१ में प्रकाशित हुआ था।

सन् १९२१ में ही उन्हें नोबेल-पुरस्कार देने की योजना थी, पर उसे लेने को वे किसी प्रकार राज़ी न हुए। अन्त में सन् १९३१ में, मृत्यु के उपरान्त उन्हें यह पुरस्कार देकर एकेडेमी ने अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दे ही डाला। इस प्रकार मृत्यु के उपरान्त पुरस्कृत होने वाले, शायद वे अकेले ही हैं। प्रथम बार पुरस्कार अस्वीकार करने का कारण उन्होंने अपनी एक पुस्तक "लूई सिन्क्लेयर को नोबेल-पुरस्कार क्यों मिला" में स्पष्टता के साथ लिख दिया है। उनका कथन था कि स्वेडन से बाहर मेरी पुस्तकों को पढ़ने वाला एक भी नहीं है। अतएव मैं पुरस्कार स्वीकार नहीं कर सकता।

उनकी समस्त प्रख्यात पुस्तकों का उल्लेख ऊपर हो चुका है।

जान गाल्सवर्दी

जन्म · सन् १८६७ मृत्यु सन् : १९३३

प्रसिद्ध अँगरेज़ नाटककार और उपन्यासकार जान गाल्सवर्दी (John Galsworthy) का जन्म १४ अगस्त सन् १८६७ को कूम्बे Combe) मे हुआ था। हेरो (Harıow) और आक्सफ़र्ड विश्व-विद्यालयों में शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त सन् १८९० से इन्होंने वकालत प्रारभ की, पर प्रवृत्ति साहित्यिक थी, इसीलिए वकालत मे मन न लगा। उपन्यास क्षेत्र मे इनका प्रथम विकास 'जोसेलिन' (Joselvn) के रूप में दिखाई दिया। उस समय इनकी अवस्था ३० वर्ष की थी। पर जनता को इनके असली रूप का परिचय इनके दूसरे उपन्यास 'दी आइलैण्ड फेरिसीज़' (The Island Pharisees) द्वारा सन् १९०४ मे हुआ और तीसरे उपन्यास 'दी मैन आफ़ प्रापरटी' (The Man of Propeıty) ने तो, जो सन् १९०६ मे प्रकाशित हुआ, इन्हें प्रख्यात ही कर दिया। यह फ़ोरसाइट सागा (The Forsyte Saga) नामक प्रख्यात अनुक्रम का प्रथम उपन्यास था। इसके बाद इसी माला मे 'दि इण्डियन समर आफ़ ए फ़ोरसाइट' (The Indian Summer of a Forsyte) सन् १९१८ मे, 'इन चान्सेरी (In Chancery) सन् १९२० मे, 'एवेकिनिङ्ग' (Awakening) भी सन् १९२० में और 'टु लैट' (To let) सन् १९२१ मे प्रकाशित हुए। विक्टोरिया युग के अपरार्द्ध और एडवर्ड युग के पूर्वार्द्ध की उच्च मध्यवर्ग की सामाजिक अवस्था का चित्रण इन उपन्यासों की विशेषता है। उस समाज का चित्रण गाल्सवर्दी के कुछ पूर्ववर्त्ती उपन्यासों में हुआ है, जिनमे 'दि कण्ट्री हाउस' (The Country House) सन् १९०७ मे प्रकाशित '.फ्रेटरनिटी' (Fraternity) सन् १९०९ मे प्रकाशित, 'दि पैट्रीशियन' (The Patrician) सन् १९११ मे प्रकाशित और 'फ्री लैण्ड्स' (The Free Lands) सन् १९१५ में प्रकाशित विशेष उल्लेखनीय

हैं। सागा सिरीज़ की समस्त पुस्तकें पीछे से एक जिल्द में संग्रह कर दी गईं। इस संग्रह की दो लाख से अधिक प्रतियाँ अब तक बिक चुकी हैं।

इसके पश्चात् इन्होंने दूसरी नाटकत्रयी (Trilogy) लिखी जिसका प्रथम नाटक 'दी ह्वाइट मंकी' (The White Monkey)
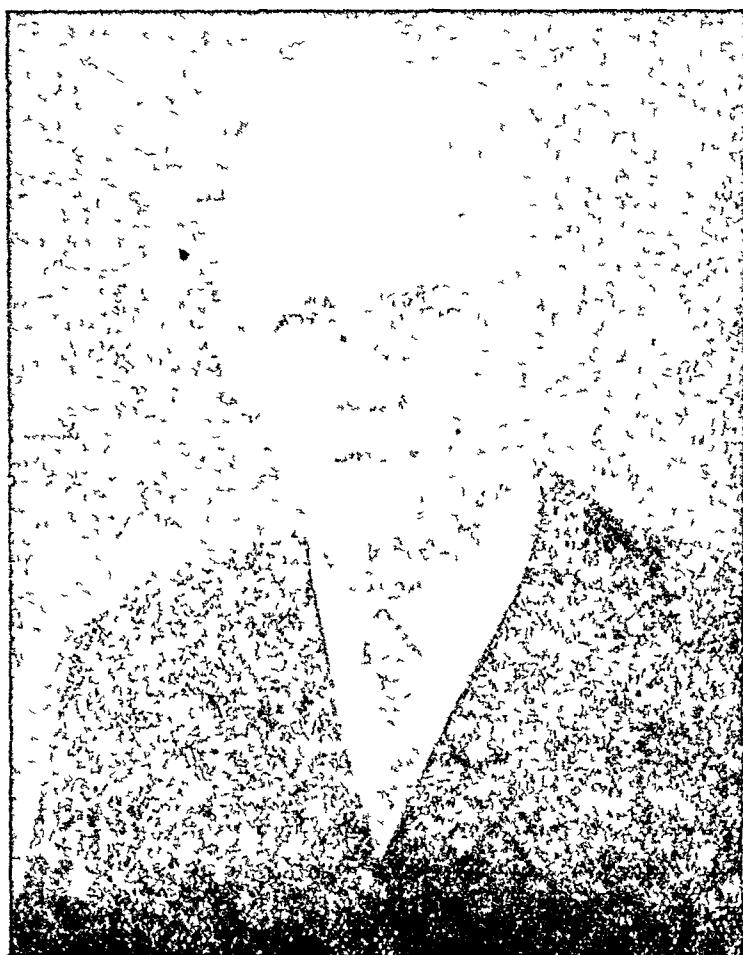
जान गाल्सवर्दी

सन् १९२४ में लिखा गया था और शेष दो जिनके नाम 'दि सिल्वर स्पून' (The Silver Spoon) और 'स्वान साँग' (Swan Song) हैं, उसके बाद क्रमशः सन् १९२६ और १९२८ में। इन तीनो नाटकों

में युद्ध के पश्चात् के अँग्रेज़ समाज का पूर्ण विवरण कलापूर्ण ढंग से उपस्थित किया गया है।

'सिल्वर स्पून' से पता लगता है कि यौवन और सौन्दर्य के प्रति गाल्सवर्दी के हृदय मे कितनी सहानुभूति है। पर साथ ही यह भी ज्ञात हो जाता है कि युद्ध के पश्चात् के नए संसार को अपनाने में ये असमर्थ रहे और उसके अंग बनने के बजाय आलोचक बन बैठे। इन तीनों पुस्तकों में एक द्रष्टा की प्रतिक्रियावादी भावनाओं की झाँकी अधिकतर देखने को मिलती है।

गाल्सवर्दी ने बहुत-सी कहानियाँ भी लिखी हैं जिनमें 'दि डार्क फ्लावर' (The Dark Flower) की चर्चा अधिक हुई है। इनकी कहानियों का एक संग्रह 'दि केरेवन' (The Garavan) नाम से सन् १६२५ में प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई निबन्ध भी लिखे हैं जिनके विषय सामाजिक व नैतिक प्रश्न हैं। इन निबंधों से मानव के प्रति गाल्सवर्दी की सहानुभूति और इनकी विशाल हृदयता का पता मिलता है। युद्ध-कालीन अपव्ययता पर अपनी एक पुस्तक 'दि बर्निङ्ग स्पियर' (The Burning Spear) में इन्होंने अच्छी तरह टीका-टिप्पणी की है।

पर गाल्सवर्दी की प्रसिद्धि नाटककार रूप में ही सबसे अधिक है। इनके अधिकांश नाटकों का आधार सामाजिक और नैतिक प्रश्न हैं जिन्हें उपस्थित करते समय ये तर्कपूर्ण निर्णायक की भाँति सतर्क दिखाई पड़ते हैं। दोनों पक्षों के पात्र समान उद्वेग के साथ संघर्ष में पड़ते हैं, जिससे नाटकीयता में बहुत वृद्धि हो जाती है।

गाल्सवर्दी के कथोपकथन स्वाभाविकता के अत्यन्त निकट हैं। इस शैली को अपनानेवाले अंग्रेज लेखकों में गाल्सवर्दी प्रथम हैं। इस प्रकार इनकी शैली पिनरो की शैली से सर्वथा विपरीत है। पिनरो के कथोपकथनों में नाटकीयता अवश्य अधिक है, पर वे सर्वथा कृत्रिम और अस्वाभाविक हैं। यही बात बर्नार्ड शा के सम्बन्ध में भी कही

जा सकती है। शा महोदय के नाटकों में कथोपकथन अत्यन्त दुरूह और लम्बे हो जाते है अतः वे स्वाभाविक नहीं लगते। गाल्सवर्दी के नाटकों के कथोपकथनों की स्वाभाविकता इस सीमा पर पहुँच गई है कि जब तक उन नाटकों के खेलने वाले असाधारण व्युत्पन्न न हों, कथोपकथन साधारण और नीरस से लगने लगते हैं। इनके समय की बोलचाल की अँग्रेज़ी में गद्यात्मकता बहुत थी जिसका प्रभाव इनकी रचना शैली पर पड़ना स्वाभाविक ही था।

सन् १६२६ में प्रकाशित नाटक 'इस्केप' (Escape) में गाल्सवर्दी ने बायस्कोप की 'टेकनीक' को अपनाने का प्रयत्न किया है। इस प्रयत्न में उन्हें आशा से अधिक सफलता प्राप्त हुई है और उन्होंने प्रमाणित कर दिया है कि नाटक 'टेकनीक का ध्यान रखते हुए सावधानी से लिखे और खेले जायँ तो फ़िल्मों से कहीं अधिक रोचक और आकर्षक हो सकते हैं।

गाल्सवर्दी का रेखाचित्र एक प्रख्यात लेखक ने इन शब्दों में उपस्थित किया है—

"कद मध्यम आकार का, मितव्ययी, शक्तिशाली, सुन्दर लम्बा सिर, शरीर सुगठित, नाक सीधी, माथा ऊँचा, सिर गंजा, आँखों पर चश्मा—यही गाल्सवर्दी की रूपरेखा है। उनकी आवाज़ सुरीली, स्पष्ट और ऊँची थी। वे 'स्वर साधने' की चेष्टा बिना किए ही बोलते थे। बोलते-बोलते बीच में रुक जाना प्रभाव डालने के लिए ठीक समझते थे। शब्दों पर ज़ोर देना नहीं। उनमें लेखक के प्रायः सभी गुण थे। वक्ता के नहीं।"

विभिन्न राष्ट्रों में सद्भावना उत्पन्न करने और उन्हें निकट लाने के लिए गाल्सवर्दी ने जीवनभर प्रयत्न किया। इसके लिए उन्होंने एक "पी० इ० एन० क्लब" की योजना भी चलाई थी जिसमें अंतर्राष्ट्रीय लेखक योग देते और एक दूसरे को समझने का प्रयत्न करते थे।

सन् १९३२ में 'फोरसाइट सागा' के लिए इन्हें नोबेल-पुरस्कार दिया गया, पर उसके दूसरे ही वर्ष इनकी मृत्यु हो गई।

इनके निम्नांकित नाटक बहुत प्रख्यात हैं—

The Silver Spoon Joy. Strife The Pigeon The Eldest Son The Fugitive The Skin Game Loyalties. The Forest

---

आइवन बूनिन

जन्म सन् १८७०

आइवन अलेग्जेविच बूनिन (Ivan Alexeyevich Bunin) रूस के निवासी हैं। ये जिस वंश के रत्न हैं वह कला, विज्ञान और राजनीति में रूस में पिछली शताब्दी से अग्रणी समझा जाता है। इस वंश के दो महान् व्यक्ति तो ऐसे हैं जो अभी पिछले दिनों में ही रूस के परम-प्रख्यात व्यक्तियों में से थे। एक तो अन्ना बूनिन (Anna Bunin) और दूसरे वेसलिस जूकोवस्की (Vassilij Jukovsky)। इनमें से जूकोवस्की, जो रूसी-तुर्की दम्पति की सन्तान थे, रूसी-साहित्य के प्रतिनिधि लेखकों में गिने जाते हैं। तुर्जनेव और टाल्स्टॉय की भाँति बूनिन भी रूसी कुलीन वर्ग में से हैं जिनकी मध्यरूस के उपजाऊ भाग में वंशपरंपरागत एक अच्छी भू-सम्पत्ति है।

रूस के वारोनेश (Voronesh) नामक नगर में १० अक्टूबर, १८७० को आइवन बूनिन का जन्म हुआ था। बचपन में ये अपने पिता की रियासत पर बने रहे। अभी ये छोटे ही थे कि इनकी एक छोटी बहिन की मृत्यु हो गई। आइवन उसे बहुत प्यार करते थे। उसकी मृत्यु से इनके हृदय पर गहरा धक्का लगा। बचपन में ही

संसार से विरक्त होकर, एकान्त मे चुपचाप बैठे रहना और धर्म की चर्चा करना ही इनका काम रह गया। और कुछ इन्हें सुहाता ही न था। डाक्टरों को दिखाया गया तो उन्होने कह दिया कि इन्हें विषाद रोग (Mel)ncholia हो गया है। सौभाग्य से इनके वे विषादमय

अ इवन बूनिन

दिन कुशलता से व्यतीत हो गए और उनका इनके मस्तिष्क पर कोई बुरा या घातक प्रभाव नहीं पड़ा।

मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त हो जाने पर सर्वप्रथम इनकी प्रतिभा ने

चित्रकार के रूप में विकास किया। इसका प्रभाव इनकी बाद की साहित्यिक कृतियों पर भी स्पष्टतया परिलक्षित होता है। बाल्यकाल से ही ये कविताएँ और कहानियाँ लिखने लगे। इनकी रचनाएँ आरम्भ से ही छपने लगीं और उनके कारण इन्हें आदर भी मिलने लगा। कुछ दिन बाद इनकी लिखित वस्तुओं का खासा ढेर हो गया। वह ढेर छप जाने पर कई मोटी-मोटी जिल्दों के रूप में जनता के सामने आया, जिनमें से चार जिल्दें इनकी स्वरचित कविताओं की थीं, दो जिल्दें अंग्रेज़ी कविता के रूसी पद्यानुवाद की और दस मोटी जिल्दें गद्य-कृतियों की। इन पुस्तकों का जनता-द्वारा अच्छा स्वागत हुआ और समालोचकों ने भी काफ़ी प्रशंसा की। फल यह हुआ कि अल्पकाल में ही अपनी पुस्तकों के लिए इन्हें अनेक पुरस्कार और पदक प्राप्त हो गए जिनमें सब से अधिक महत्त्वपूर्ण पुरस्कार रशियन एकेडेमी का 'पुश्किन-पुरस्कार' था।

सन् १६०६ में 'रशियन एकेडेमी' ने इन्हें अपना सम्माननीय सदस्य बना लिया। रूस में साहित्यिक के लिए यह सब से बड़ा सम्मान था। प्रसिद्ध साहित्यिक टाल्स्टॉय को भी यही सम्मान प्राप्त हुआ था।

रूस में आशातीत ख्याति प्राप्त हो जाने पर भी आइवन को विश्व-प्रख्याति प्राप्त करने में अधिक समय लगा। इसके अनेक कारण थे। एक तो ये अपने को राजनीति से सर्वथा निर्लिप्त रखते थे। यहाँ तक कि अपनी रचनाओं में किसी प्रकार की राजनीतिक विचार-धारा का समावेश किसी प्रकार न होने देते थे। दूसरे इनकी रचनाएँ साहित्य के किसी सम्प्रदाय विशेष का प्रतिनिधित्व नहीं करती थीं। अर्थात् न ये छायावादी थे न प्रतीकवादी, न रोमाञ्चवादी, न पुरातनवादी और न प्रकृतिवादी। न अपना विज्ञापन करने के लिए इन्होंने विदेश-भ्रमण और वहाँ के साहित्यिकों से संबन्ध स्थापन ही किया था।

रूस के साहित्य में प्रतिष्ठित हो जाने के पश्चात् ये संसार के अनेक

देशों में भ्रमणार्थ निकले। पहले इन्होंने महान् रूस के प्रत्येक प्रान्त में भ्रमण किया, फिर इटली, तुर्की, यूनान, सीरिया, पेलेस्टाइन, मिश्र, अल्जीरिया, ट्यूनिस, आदि में भ्रमण किया। इनका कथन था कि "मैं पृथ्वी का घूँघट उघार कर उसके चेहरे पर अपनी आत्मा की मुद्रा अंकित कर देना चाहता हूँ।"*

उन दिनों ये दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक और ऐतिहासिक विषयों में समान रूप से दिलचस्पी ले रहे थे।

सन् १९१० में इनका प्रथम उपन्यास 'गाँव' (The Village) प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास एक वृहत् उपन्यास माला का प्रथम पुष्प था। इस माला में प्रकाशित उपन्यासों में रूस की आत्मा का नग्न और यथातथ्य रूप देखने को मिलता है। रूसी जनता के जो चित्र इसमें आए हैं वे तनिक भी अतिरञ्जित या कल्पनास्पृष्ट नहीं हैं। वस्तुतः जो कुछ और जिस रूप में इनकी आँखों के सामने आया है, उसी रूप में उपस्थित किया गया है। इस प्रकार वस्तुगत यथार्थता इनकी कला का प्रधान अंग बन गई है। चरित्र-चित्रणों में छायापूर्ण और प्रकाशपूर्ण पहलुओं को सामञ्जस्य के साथ स्थान दिया गया है और किसी पहलू विशेष के प्रति पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण नहीं रक्खा गया।

ऐसी रचनाओं पर विवाद उठ खड़ा होना स्वाभाविक ही है। आइवन भी जनता के वाद-विवाद और आलोचन-प्रत्यालोचन के विषय बने। परिणाम इनके अनुकूल ही हुआ। समाचार-पत्रों में आये दिन चर्चा रहने के कारण इनका काफ़ी विज्ञापन हो गया और शीघ्र ही इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हो गई।

बोलशेविज़्म का बोलबाला हो जाने पर सन् १९१८ में आइवन ने मास्को छोड़ दिया और जाकर देहात में डेरा जमाया। पर वहाँ भी

---

*"My aim is to unveil the face of the earth and impress upon it the stamp of my own soul."

रहना इनके लिए दुष्कर हो गया। अन्त में सन् १०२० में इन्होंने अपनी जननी-जन्मभूमि से सदैव के लिए बिदाई ले ली और जाकर पेरिस में रहने लगे। तब से या तो पेरिस मे रहते हैं या भूमध्यसागर के तटवर्त्ती किसी नगर में।

रूसी चरित्रों का सम्यक् विवेचन अपनी रचनाओं मे कुशलता के साथ उपस्थित करने के उपलक्ष में सन् १६३३ का साहित्यिक नोबेल-पुरस्कार इन्हें प्रदान किया गया। रूस में नोबेल-पुरस्कार प्राप्त करने वाले ये प्रथम विद्वान् हैं।

आइवन बूनिन की निम्न रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—

The Gentleman from San Francisco The Village An Evening in the Spring Dreams of Chang and other Stories Fifteen Tales

---

लुईजो पिराण्डेलो

जन्म सन् १८६७

सन् १६३४ के पुरस्कार - विजेता इटली के प्रख्यात उपन्यास लेखक और नाटककार लुईजी पिराण्डेलो (Luigi Pirandello) सिसली के निवासी हैं। १८ जून, १८६७ को उसी द्वीप में इनका जन्म हुआ था। चौबीस वर्ष की अवस्था तक ये रोम मे रहे। सन् १८६१ मे ये जर्मनी गये और वहाँ बान विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में डिग्री प्राप्त की। इसके बाद ये रोम के एक 'गर्ल्स हाई स्कूल' में अध्यापकी करने लगे। इन्हीं दिनों इन्होंने पद्य मे कुछ निबंध लिखे जो सन् १८८६ में वहाँ की एक प्रसिद्ध पत्रिका (Mal Ciocondo)

में प्रकाशित हुए। इसके पश्चात् सिसली निवासी एक अपने मित्र की प्रेरणा से इन्होंने एक उपन्यास (L. esclusa) लिखा जो सन् १८६४ में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में यथार्थवाद की पुट अवश्यकता से अधिक थी। इस कारण यह अधिक लोकप्रियता प्राप्त न कर सका।

लुईजी पिराण्डेलो

इसके बाद इन्होंने कहानियाँ लिखना आरम्भ किया जो सामयिक पत्रों मे बराबर छपती रही। इन कहानियो को जनता ने खूब पसन्द किया।

अच्छे लेखकों में इनकी गणना कुछ दिन बाद हुई जब इनका प्रख्यात उपन्यास (Il fu Mattia Pascal) प्रकाशित हुआ। इसका नायक एक विचित्र मनुष्य है। परिचित लोगों में अपनी मृत्यु की सूचना फैलाकर वह छिप जाता है और फिर नवीन स्थान में जाकर दूसरे नाम से कार्य करता है। अन्त मे कुछ दिन बाद उसका छल खुल जाता है। अपनी कला के सबध मे इन्होंने एक स्थान पर स्वयं कहा है—

"I think that life is a very sad piece of buffoonery, because we have in ourselves, without being able to know why, where-fore and whence, the need to deceive ourselves constantly by creating a reality (one for each and never the same for all), which from time to time is discover d to be vain and illusory. My art full of better compassion for all those who deceive themselves, but this compassion cannot fail to be followed by th ferocious derision of destiny which condemns man to deception*

पिराण्डेलो ने नाटकों का लिखना सन् १६१२ से प्रारंभ किया। इस क्षेत्र में उन्हें प्रारंभ से ही अच्छी सफलता प्राप्त हुई। आरंभ में कुछ आलोचकों की राय इनके नाटकों के संबंध में यह थी कि उनमें

---

*मैं जीवन को एक दु खद विडम्बना के रूप में लेता हूँ। कारण यह न जानते हुए भी कि हम में यह प्रवृत्ति क्यों, किस प्रकार और कहाँ से आती है हम अपने को धोखे में रखने का प्रयत्न करते हैं, हम में से प्रत्येक पृथक् पृथक् और एक दूसरे से भिन्न रूपों की रचना करता है जो समय-समय पर मिथ्या और भ्रान्तिपूर्ण सिद्ध होते हैं। मेरी कला मे आत्म-प्रवंचकों का चित्रण निर्ममता के साथ होता है; पर मेरी निर्ममता से भी अधिक कटु होता है उन आत्म-प्रवंचकों की नियति का कार्य।

जीवन का वस्तु-अनुरूपी चित्रण नहीं है। पर अब समालोचकों की सम्मति बदल गई है और वे इन्हें नोबेल-पुरस्कार प्राप्त नाटककारों में सर्वोच्च मानते हैं।

सन् १९२५ से पिराण्डेलो ने रोम में एक 'कला रंगमच' की स्थापना की है जिसके मालिक वे स्वयं है। एक बार अपने दल के साथ वे इंग्लैण्ड भी गए थे और वहाँ अपने नाटकों का अभिनय लोगों को दिखाया था जो बहुत पसंद किया गया। उनकी कृतियों का अनेक भाषाओं मे अनुवाद हो चुका है। अँग्रेज़ी में अनुवादित उनके कुछ ग्रथों की सूची इस प्रकार है—

Sho t The Old and the New. Three Plays. Three Further Plays.

यूजेन ग्लेडस्टोन ओ'नील

जन्म : सन् १८८८

सन् १९३६ के साहित्यिक नोबेल-पुरस्कार के विजेता ओ'नील (Eugene O'Neill) अमेरिका निवासी हैं। १६ अक्टूबर सन् १८८८ को उनका जन्म न्यूयार्क में हुआ था। अनेक सस्थाओं में अध्ययन करने के पश्चात् अंत में वे प्रख्यात विश्वविद्यालय हार्वर्ड में प्रविष्ट हुए और वहाँ से उत्तीर्ण होकर कई प्रकार के व्यवसायो का परीक्षण किया जिनमें विशेष सफलता नहीं मिली। कुछ समय तक वे जहाज़ों पर रहे, फिर अभिनेता बने और उसके बाद एक समाचारपत्र के सवाद-दाता हो गए। जीवन - निर्वाह के लिए विविध प्रकार के उपायो को अपनाते हुए भी नाटक उनके जीवन का प्रधान ध्येय बना रहा और

जब कभी अवकाश पाते, नाट्यकला पर अध्ययन, विचार और विचार-विनिमय अवश्य करते।

इसी बीच संयोगवश इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया जिसे सुधारने के लिए उन्हें एक सेनाटोरियम की शरण लेनी पड़ी। वहाँ रहते हुए जीवन की विविधता के अनेक चित्र उन्हें ऐसे देखने को मिले जिनकी छाप चित्त पर बहुत गहरी पड़ी। यह मानों उनके लिए नाटक लिखने का दैवी निमंत्रण था।

नाटक लिखने की ओ'नील की अपनी विचित्र प्रणाली है। चालीस-पचास नाटकों के कथानक वे एक साथ तैयार करते और उनकी रूपरेखा पर महीनों विचार करते रहते हैं। फिर उनकी अभिनेयता पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते हैं। जब सब ठीक-ठाक हो जाता है तब लेखनी उठाते हैं और सबको पूरा कर डालते हैं। फिर मित्रों में उनकी चर्चा करके और उनके कथानकों व निर्वाह पर वाद-विवाद करके तब छपने को देते हैं।

इस क्षेत्र में भाग्य ने इनका साथ अच्छी तरह दिया है। उनके नाटक प्रारंभ से ही प्रशंसित हुए हैं और सफलता-पूर्वक अनेक बार रंगमंच पर दिखलाए गए हैं। 'बियाण्ड दी होराइजन' (Beyond the Horizon), 'इम्परर जोन्स' (Emperor Jones), 'लव 'एमंग दी एम्स' (Love Among the Elms) और 'दी ग्रेट गॉड ब्राउन' (The Great God Brown) इनके प्रसिद्ध नाटक हैं। अपने तीन निम्न नाटकों पर १९२०-१९२२ और १९२८ में इन्हें तीन बार पुलीट्जर-पुरस्कार प्राप्त हो चुका है—

'क्षितिज के उस पार' (Beyond the Horizon)

आना क्रिस्टी' (Anna Christie)

'विचित्र व्यायोग' (Strange Interlude)

इनमें से तीसरे नाटक 'विचित्र व्यायोग' की कथा अत्यधिक सनसनीपूर्ण है। उसकी नायिका नीना है। नीना का विवाह एक ऐसे

व्यक्ति के साथ हो जाता है जिसके कुल में उन्माद वंशपरंपरागत रोग है। नीना को इसका पता तब लगता है जब उसके पेट में बच्चा आ जाता है। वह सोचती है, उसका बच्चा पागल होगा; वह पागल की माँ कहलायगी, यह विचार उसके लिए असह्य है। नहीं वह पागल

यूजेन ग्लेडस्टोन ओ'नील
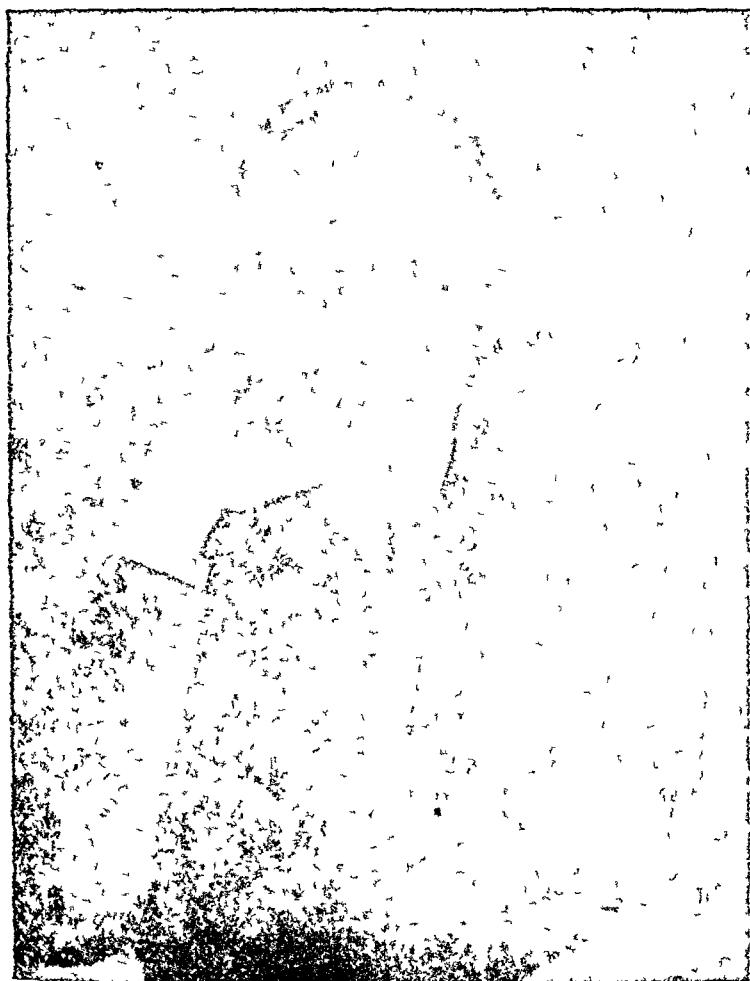
की माँ नहीं बनेगी। इससे निपूती रहना अच्छा है। वह अनेक उपाय करके गर्भ को नष्ट कर देती है।

पर गर्भ नष्ट कर देने के बाद उसका चित्त और भी अशांत, और

ना चपल, ... जिसने अपने वंश के एक रक्षक का नाश किया है। इस क्षति की पूर्ति किस प्रकार हो। वह अपनी सास से इसके लिए परामर्श करती है। अन्त में वह इस निश्चय पर पहुँचती है कि किसी अन्य पुरुष के द्वारा, जो सर्वथा स्वस्थ हो, उसे पुत्रोत्पादन कर लेना चाहिए। इस कार्य के लिए एक युवा और सुंदर डाक्टर नेड डारेल की नियुक्ति होती है। वह डाक्टर नीना और उसके पति दोनों का घनिष्ट मित्र है। इन दोनों के अतिरिक्त नीना का एक प्रेमी और भी है जिसके विषय में न डाक्टर कुछ जानता है और न नीना का पति—यही व्यायोग है—व्यायोग या 'इण्टरल्यूड' के अर्थ ही 'बीच में आ पड़ने वाली घटना' है। मनोवैज्ञानिक नाटकों में यह उपन्यास उच्चतम कोटि का है, ऐसा इसके संबंध में समालोचकों का मत है।

ओ'नील के अधिकांश नाटक आवश्यकता से बहुत अधिक लम्बे होते हैं। यहाँ तक कि जब वे अपने संक्षिप्त रूप में रजतपट पर अवतरित होते हैं तब भी उनकी लम्बाई लोगों को परेशान कर देती है। फिर भी उनके पात्रों में एक विचित्र प्रकार का आकर्षण रहता है जो उस नीरसता की क्षतिपूर्ति कर देता है। और दर्शक अंत तक नाटक देखने को एक सा उत्सुक बना रहता है।

ओ'नील जीवन के धरातल पर से ही अपने पात्रों का चुनाव करने के लिए प्रसिद्ध हैं। उनका स्थान अंग्रेज़ी के नाटक लेखकों में प्रतिष्ठित है, अतः उनकी प्रत्येक कृति की बड़े उत्साह के साथ प्रतीक्षा की जाती है।

उनकी अब तक प्रकाशित रचनाओं में उल्लेखयोग्य निम्न हैं—

Thirst and other Oneact Plays. The Hairy Ape All God's Chillun's. Got Wings and Welded. Fountain Marco Millions Lazarus Laughed and Dynamo Gold.

मार्टिन डूगार्ड

जन्म : सन् १८८१

मार्टिन डूगार्ड (Martin Dugard) पेरिस के निकट नेविल्ले (Nevilly) में पैदा हुए थे। प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई।

मार्टिन डूगार्ड

साहित्य के संपर्क में ये सन् १९०८ से आए जब उनकी प्रथम पुस्तक 'देवेनिर' (Devenir) प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् सन् १९१५ में

इनका एक बृहत्काय उपन्यास 'जीन बेरोइस' (Jean Barois) प्रकाशित हुआ—यह उपन्यास ईसाइयों के 'न्यू टेस्टामेण्ट' के 'विश्वास' प्रश्न को लेकर लिखा गया है, जो ड्रेफ़स के दिनों (Days of Dreyfus) की याद दिलाता है।

सन् १९२१ में इनका 'ले दिवाल्त' (Les Thibault) नामक प्रख्यात उपन्यास प्रकाशित हुआ जिसमें समसामयिक जीवन को पृष्ठ-भूमि मे रखते हुए यौवन की कहानी दी गई है। इस उपन्यास से इनका नाम फ्रान्स और समस्त योरप मे व्याप्त हो गया। इसमें इन्होंने स्वयं को तटस्थ रखते हुए कुशलता के साथ सन् १९१४ के युद्ध के पूर्व के एक परिवार और उसके शुभचिन्तकों का चित्रण किया है, और सफलतापूर्वक यह दिखला दिया है कि किस प्रकार लोगों के भाग्य उन्हें विवशतापूर्वक युद्ध की ओर ले जा रहे थे। इस पुस्तक की अन्तिम तीन जिल्दें जिनका नाम 'लेते' (Lete) है, और जिनके द्वारा कहानी पूर्णता प्राप्त करती है, टाल्स्टॉय के प्रख्यात ग्रंथ 'युद्ध और शान्ति' (War and Peace) का स्मरण दिलाती हैं। ये तीनों आने वाली पीढियों के लिए वास्तविक मानवीय प्रमाणयन्त्र हैं। इन दोनों के वीच में डूगार्ड के और भी कई बड़े-बड़े उपन्यास प्रकाशित हुए। इनके अतिरिक्त इन्होंने कुछ प्रहसन और सुखान्त नाटक भी लिखे हैं जिनमें इनकी मानवता के प्रति वास्तविक सहानुभूति, निष्पक्ष निर्णय करने की योग्यता और उदार-प्रवृत्ति अनेक रूपों में प्रकट हुई है।

ये आजकल एक मुहाफ़िज़ख़ाना के इन्चार्ज हैं। सन् १९३७ में इन्हें पेरिस नगर का साहित्यिक-पुरस्कार (The Literature Prize of the City of Paris) प्राप्त हुआ था और उसी वर्ष नोबेल-पुरस्कार भी।

पर्ल बक

जन्म : सन् १८९२

सन् १९३८ में साहित्यिक नोबेल-पुरस्कार प्राप्त करने वाली श्रीमती पर्ल बक (Pearl Buck) का असली नाम मिसेज़ रिचार्ड जे० वाल्स (Mrs Rechard J Walsh) है। ये अमेरिकन महिला हैं। इनका जन्म सन् १८९२ में हुआ था। इस प्रकार अपनी प्रतिभा के कारण इन्होंने नोबेल-पुरस्कार जैसा उच्च पुरस्कार केवल ४६ वर्ष की अवस्था में प्राप्त कर लिया था।

पर्ल बक का शैशव अमेरिका में ही व्यतीत हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा कुछ छोटे स्कूलों से प्राप्त कर ये उच्च शिक्षा के लिए 'रेनडोल्फ़ मेकन के महिला कालिज' (Randolf Macon College for Women) में प्रविष्ट हुईं और वहाँ से कार्नेल विश्वविद्यालय (Cornell University) में गईं, जहाँ से एम० ए० पास किया।

इसके कुछ दिन बाद इन्हें चीन जाने का सुयोग प्राप्त हुआ जहाँ वे निरन्तर १०-१५ वर्ष तक रहीं। चीनी बोलचाल, रहन-सहन, सभ्यता, संस्कृति आदि के अतिरिक्त इन्होंने चीनी जनता के उस वर्ग का जिसे निम्न-मध्यवर्ग कहते हैं, बड़ी सूक्ष्मता से निरीक्षण किया। फल यह हुआ कि सन् १९३० में इन्होंने अपनी प्रथय कृति 'ईस्ट विण्ड वेस्ट विण्ड' (East Wind : West Wind) नाम से प्रकाशित की। जन-समाज में इनका काफ़ी नाम हुआ क्योंकि चीन की आभ्यन्तरिक अवस्था का सच्चा चित्र किसी विदेशी लेखक ने अब तक ऐसी सुन्दरता और सफलता से उपस्थित नहीं किया था।

परन्तु इनकी अधिक कीर्त्ति दूसरी रचना 'गुड अर्थ' (Good Earth) से हुई। चीनी कृषक-परिवार का इससे सुन्दर वर्णन अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। इनका नायक वैंगलुंग एक ग़रीब किसान का बच्चा है जिसके घर में न खाने का अन्न है और न पहिनने को वस्त्र।

खेती भी योंही (कुछ) मामूली-सी होती है। बड़े परिश्रम और उद्योग से वह शहर के एक धनिक घर की दासी से ब्याह करने मे सफल हो जाता है। यह दासी वैंगलुंग के जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्त्तन कर देती है। वह न केवल परिश्रमपूर्वक उसके घर की व्यवस्था करती है, खेती के कार्य में भी उसके कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करती है, जिससे वैंगलुंग का जीवन व्यवस्थित हो जाता है और उसकी कार्यक्षमता बढ़ जाती है। ठीक समय पर उसके पुत्र होता है। पर ऐसे कठिन समय पर भी उसकी स्त्री केवल कुछ घंटों का अवकाश लेती है और शेष समय पति के कार्य मे बराबर सहायता करती है।

इस प्रकार पर्ल बक ने उस स्त्री के रूप में अमेरिका तथा अन्य सभ्य संसार की अधिक सभ्य कहानेवाली फ़ेशनपसंद महिलाओं के सामने एक प्रतिरूप रक्खा है जिन्हें जीवन यात्रा मे क़दम-क़दम पर दाइयाँ, नर्सों, डाक्टरों, दवाइयों और नौकरानियों की ज़रूरत रहती है। जो स्वयं को इस सीमा तक आवश्यकता का ग़ुलाम बना डालती हैं कि उनका जीवन अत्यन्त जटिल और अशान्तिपूर्ण बन जाता है। न वे स्वयं स्वस्थ होती हैं, न डिब्बे के दूध पर पलनेवाली उनकी सन्तानें हो ही स्वस्थ और दीर्घजीवी होती हैं।

पत्नी की कार्यपरायणता, अकाल की परिस्थिति और लुंग का अथक उद्योग कुछ काल पश्चात् उसे धनवान् बना देते हैं और वह शीघ्र ही चीन के सम्पन्न नागरिकों की श्रेणी में आ जाता है। उसी समय उसके जीवन में कमलिनी का प्रवेश होता है जो अत्यन्त सुंदरी है। वैंगलुंग बहुत धन देकर उसे अपने घर पर रख लेता है। इस प्रकार मानों वह जनता के समक्ष यह आदर्श उपस्थित करना चाहता है कि परिश्रमपूर्वक उपार्जित सम्पत्ति से जब हराम में मिली सम्पत्ति का योग हो जाता है तभी चित्तवृत्ति कलुषित हो जाती है और मनुष्य मर्यादाभंग करके दुष्कृत्यों की ओर प्रवृत्त होने लगता है।

'धरतीमाता' इस उपन्यास में आदि से अन्त तक व्याप्त है।

इसी के प्रताप से वह इतना प्रभावशाली बन जाता है। उसके वृद्ध और शिथिल हो जाने पर जब उसके शहर और अमीरी में पले लड़के और एक खेत को बेंच डालने के लिए आपस में मंत्रणा करते हैं, तब उस मंत्रणा की भनक वैंगलुंग के कान में भी पड़ जाती है और वह विचलित हो उठता है। वह कहता है—"आलसी लड़को, क्या ज़मीन बेचने का विचार कर रहे हो?" फिर लड़कों के बहाना बनाने पर उन्हें अन्तिम चेतावनी देता है—"खेत बेंचना शुरू हुआ और धनी परिवार का अन्त समझो।"

सन् १६३२ में इनका दूसरा वृहत्तर उपन्यास "धरतीमाता के पुत्र" (The Good Earth Sons) प्रकाशित हुआ। इसमें जैसा कि सहज ही समझा जा सकता है वैंगलुंग के पुत्रों की कथा है और यह दिखलाया गया है कि एक श्रमिक का पुत्र अपनी ईमानदारी और परिश्रम के बल पर बढ़ कर बड़ा आदमी बन जाता है। पर उसके पुत्र—जो अब बड़े आदमी के वंशज होते हैं—शीघ्र ही असफल हो जाते हैं, क्योंकि उनको परिश्रम करने की नहीं, ऊँची उड़ानें भरने की योग्यता होती है। वे नित्य नई योजनाएँ बनाना जानते हैं और उनका लेखा-जोखा ठीक समझाने की बुद्धि भी रखते हैं, पर किसी योजना को सफलता-पूर्वक अन्त तक नहीं निभा पाते। साथ ही धन-सुलभ दुर्गुण भी उनमें डेरा जमा लेते हैं। फल यह होता है कि भरा-पूरा परिवार शीघ्र ही विलास का केन्द्र बन जाता है। विलास स्वार्थपरायणता और आत्माराधन को जन्म देता है। इसी से परिवार में गृहकलह का बीजारोपण होता है और अन्ततोगत्वा परिवार दरिद्रता के उसी गर्त में पहुँच जाता है, जहाँ से पूर्वजों ने बड़े कठिन परिश्रम से उसे निकाला था।

इसके बाद सन् १६३२ में इनकी कहानियों का संग्रह 'प्रथम पत्नी' (The First Wife) नाम से प्रकाशित हुआ। फिर १६३३ में 'शुई हुई च्वान' (Shui Hui Chuan) निकला, जो एक चीनी

कृति का अनुवाद है। सन् १९३१ में इनका 'माता' (Mother) उपन्यास निकला। उसके बाद फिर उक्त चीनी परिवार की ओर इनकी लेखनी मुड़ी और सन् १९३५ में 'बँटवारा' (A House Devided) प्रकाशित हुआ। इसके बाद उसी वर्ष चीनी लुंग परिवार से संबंधित तीनों उपन्यासों का एक संग्रह (Good Earth, Sons और A House Devided) 'हाउस ऑफ अर्थ' (House of Earth) नाम से प्रकाशित हुआ।

सन् १९३६ में 'निर्वासन' (The Exile) और 'फ़ाइटिंग एंजिल' (Fighting Angel) नाम के दो महत्त्वपूर्ण उपन्यास प्रकाशित हुए, और सन् १९३८ में 'दिस प्राउड हार्ट' (This Proud Heart)। पर्ल वर्क की सब से नई ये ही दो रचनाएँ हैं जो इनके विचारों की प्रौढ़ता का परिचय देती हैं।

सन् १९३८ का नोवेल-पुरस्कार इनके 'गुड अर्थ' पर दिया गया है क्योंकि चीनी श्रमिक वर्ग का विवेचन जैसा कि उस उपन्यास मे मिलता है, अन्यत्र नहीं मिलता।

ये अभी बराबर लिख रही हैं। 'परकासी पा' (R. F D. 3 Parkassia Pa.) इनका निवास-स्थान है और वहाँ की दो प्रख्यात प्रकाशन-संस्थाओं (The John Day Co और Ashia Magazine से इनका घनिष्ठ संबंध है।

इनकी निम्न रचनाएँ अब तक प्रसिद्ध हो चुकी हैं—

East Wind West Wind, The Good Earth Sons The First Wife and other Stories. Shui Hui Chuan The Mother A House-Devided. House of Earth (Trilogy). The Exile Fighting Angel This Proud House.

सिलाँप्पा

जन्म : सन् १८८८

सन् १९३९ का साहित्यिक नोबेल-पुरस्कार प्राप्त करने वाले एमिल सिलाँप्पा (Eemil Sillanppa) फ़िनलैण्ड निवासी हैं। दुर्भाग्य से इनका अधिक परिचय प्राप्त नहीं है, क्योंकि जब इनका नाम सुनने में आया, योरप समराग्नि में कूद चुका था। अतएव इनकी पुस्तकें, यद्यपि सुनते हैं कि उनके अनुवाद संसार की सभी सभ्य भाषाओं में हो चुके हैं, हमारे देश में आज तक अप्राप्य हैं। ये आजकल हेलसिंकी (Helsinki) में निवास कर रहे हैं। ये फ़िनलैण्ड के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं और इन्होंने अपनी कला-द्वारा फ़िन किसानों का सजीव चित्र उपस्थित किया है और उनकी सामयिक समस्याओं पर विवेचनात्मक प्रकाश डाला है।

सिलाँप्पा सुशिक्षित हैं। वे फ़िनलैण्ड के किसी विश्वविद्यालय के डी० एस-सी० हैं। इनकी निम्नांकित ३ पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं :—

१—Hurskas ; अँग्रेज़ी अनुवाद का नाम 'होली मिज़री' (Holy Misery),

२—Nuorena ; अँग्रेज़ी अनुवाद का नाम 'फ़ालीन एस्लीप व्हायल यंग' (Fallen Asleeps While Young),

३—Michen tie; अँग्रेज़ी अनुवाद का नाम 'ए मैन्स वे' (A Man's Way)।

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी (जयपुर स्टेट)
का सचित्र पाक्षिक मुख-पत्र

शुभ-सूचना

शुभ मिती ज्येष्ठ शुक्ला ५ वी। निर्वाण संवत २४७३ (शुक्ल पक्ष
तदनुसार तारीख २५ मई सन् १९४७ ई० से श्री दिगंबर जैन अतिश
श्री महावीरजी की ओर से एक सचित्र पाक्षिक पत्र प्रकाशित हो रहा है।
सज्जनों को इसका ग्राहक बन कर इस शुभकार्य में सहायक होना चाहिये।

वार्षिक मूल्य सिर्फ तीन रुपया (अग्रिम)

"संदेश का साल भर में कम से कम एक बहुत सुन्दर सचित्र विशे
अंक प्रकाशित हुआ करेगा जो स्थायी ग्राहकों को इसी मूल्य में भेंट वि
जायगा।

संभव हुआ तो उपहार ग्रंथ भी भेंट करने का प्रयास किया जाय
आज ही संदेश की ग्राहक श्रेणी में नाम लिखवा कर अपनी
सुरक्षित करलें।

"संदेश" के लिये भारत के सब ही मुख्य २ व बड़े शहरों में प्रमा
संवाददाताओं की भी आवश्यकता है जो सज्जन "संवाददाता" बनना
वे कृपया प्रबन्ध संपादक से पत्र व्यवहार करें।

समाज के सब ही लेखकों कवियों व विद्वान महानुभावों से निवे
कि वे "संदेश" के लिये अपने बहुमूल्य लेख, कवितायें व अन्य रच
फोटो समाचारादि व अन्य सामग्री समय २ पर छपने को भेज कर
कार्य में सहायता दें।

"महावीर संदेश" के ग्राहक बनने के फार्म निम्न पतों पर मिल स
व वार्षिक चंदा भी वहां ही जमा कराकर रसीद प्राप्त की जा सकती है

१. श्री मैनेजर श्री महावीरजी कार्यालय, महावीर जी
२. श्री रामचंद्र खिदूका प्रधान मंत्री प्रबन्ध कारिणी कमेटी श्री महावी
   पंडित शिवदीन जी का रास्ता जयपुर सिटी
३. श्री केशरलाल अजमेरा जैन, प्रबंध संपादक व प्रकाशक "
   संदेश" जौहरी बाजार, जयपुर सिटी

निवेदक
केशरलाल अजमे
मंत्री प्रकाशन व प्रचार विभाग दि० जै०अ० क्षे० म

P Works, Jaipur